॥ श्रीहरिः ॥
1598▲
सत्संगके फूल
स्वामी रामसुखदास
गीताप्रेस गोरखपुर
GITA PRESS, GORAKHPUR

1598

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

सत्संगके फूल

[श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराजके सत्संगमें
जैसा सुना तथा समझा]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

संकलनकर्ता—

राजेन्द्र कुमार धवन

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

प्राक्कथन

जीवन्मुक्त, तत्त्वज्ञ एवं भगवत्प्रेमी महापुरुषके सत्संगसे यथाश्रुत तथा यथागृहीत बातें मैं समय-समयपर अपनी डायरीमें लिखता रहा हूँ। उनमेंसे कुछ बातें 'ज्ञानके दीप जले' नामसे प्रकाशित की जा चुकी हैं; जिन्हें पाठकोंने बहुत पसन्द किया है। अब डायरीमें लिखित कुछ बातें 'सत्संगके फूल' नामसे प्रकाशित की जा रही हैं। सत्संग-प्रेमी पाठकोंसे यह आशा है कि वे 'ज्ञानके दीप जले' की भाँति प्रस्तुत पुस्तकसे भी लाभ उठायेंगे।

विनीत—

संकलनकर्ता

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः॥

सत्संगके फूल

पराकृतनमद्बन्धं परं ब्रह्म नराकृति । सौन्दर्यसारसर्वस्वं वन्दे नन्दात्मजं महः ॥
प्रपन्नपारिजाताय तोत्त्रवेत्रैकपाणये । ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः ॥
वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् । देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणविम्बफलाधरोष्ठात् ।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

हरिः ॐ नमोऽस्तु परमात्मने नमः।
श्रीगोविन्दाय नमो नमः।
श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः।
महात्मभ्यो नमः।
सर्वेभ्यो नमो नमः।

××× ××× ××× ×××

सत्तामात्रका ध्यान बड़ा सुगम है— **'सन्मात्रं सुगमं नृणाम्'**। **परमात्मा है—यह जरूरी है, परमात्मा कैसा है—यह जरूरी नहीं है।** यह कह सकते हैं कि वह सम्पूर्ण देश, काल, वस्तु, व्यक्ति आदिमें परिपूर्ण है। जैसे हम मानते हैं कि हम श्रीरामधाम (सींथल) में हैं, ऐसे ही मान लें कि हम हर समय परमात्मामें हैं। अपने अभावका अनुभव कभी किसीको नहीं होता। जैसे मैं हूँ, ऐसे परमात्मा हैं। इस प्रकार सत्तामात्रका

ध्यान बड़ा ऊँचा ध्यान है। यह वृत्तिका ध्यान नहीं है, प्रत्युत स्वीकृतिका ध्यान है। **चिन्तन मिट जाता है, पर स्वीकृति नहीं मिटती।** भूलनेपर भी स्वीकृति नहीं मिटती।

यह विश्वास हो कि भगवान् मेरे हैं। जैसे, माँ मेरी है—यह विश्वास है। भगवान् सबसे बड़ी माँ हैं। वे माँ भी हैं, पिता भी हैं, पितामह भी हैं! वे हमारे हैं—ऐसा माननेमें बहुत आनन्द है।

××× ××× ××× ×××

शरीर निरन्तर जा रहा है। मौत नजदीक आ रही है। अतः **अपना समय उसी काममें लगाना चाहिये, जिसे हम ही कर सकते हैं, दूसरे नहीं कर सकते।** अपना कल्याण हम ही कर सकते हैं। संसारके काम तो दूसरे भी कर लेंगे।

संसारकी सेवा करनी है और भगवान्‌से प्रेम करना है। भगवान् मेरे हैं—यह बहुत मार्मिक बात है! प्रेम अपनेपनसे होता है। अतः केवल भगवान्‌को ही अपना मान लें। शरीर अपना और अपने लिये है ही नहीं।

××× ××× ××× ×××

परमात्मप्राप्ति बहुत सुगम है। द्वन्द्व ही बन्धन करनेवाला है। द्वन्द्वरहित कैसे हों? **सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलता, राग-द्वेष, ठीक-बेठीक कोई भी रहनेवाला नहीं है।** सबका अभाव हो रहा है। सृष्टिमात्र अभावमें जा रही है। उसमें क्या ठीक, क्या बेठीक? मिटनेवालेमें लगाव कैसे होगा? जो रहनेवाला नहीं है, उससे क्या राग करें, क्या द्वेष करें? क्या राजी हों, क्या नाराज हों?

संसारका वियोग ही नित्य है, संयोग नित्य नहीं है। संयोगको कोई रख सकता ही नहीं। जिसका वियोग होता

है, उसके संयोगकी इच्छा छोड़ दो। कोई भी ऐसा क्षण नहीं है, जिसमें संयोग टिकता हो, वियोग न होता हो। **केवल मौत-ही-मौत है, जीना है ही नहीं!** जीना चाहते हैं तो मरनेपर रोना पड़ेगा। जीना चाहते ही नहीं तो फिर रोना क्यों पड़ेगा? केवल संयोगकी इच्छाका त्याग करना है। रखना चाहते हैं, पर रहता नहीं, तभी दुःख होता है। **मुक्ति कठिन नहीं है, बन्धन कठिन है।**

××× ××× ××× ×××

हम यहाँ रहनेवाले नहीं हैं। हम यहाँ आये हैं और यहाँसे जाना है। **हम यहाँ पशु-पक्षियोंकी तरह अपने कर्मोंका फल भोगनेके लिये ही नहीं हैं, प्रत्युत अपना उद्धार करनेके लिये आये हैं।**

परमात्मा 'है', संसार 'नहीं' है। जो पहले नहीं था, पीछे नहीं रहेगा, वह वर्तमानमें भी नहीं है। सब वस्तुएँ 'नहीं' में जा रही हैं। संसारका 'नहीं'-पना ही सिद्ध होता है। **साधकका काम है—'नहीं' का त्याग कर देना और 'है' में स्थित होना।** त्याग तो स्वतः हो रहा है, 'यह बना रहे'— इस इच्छाका त्याग करना है। 'नहीं' स्वाभाविक नहीं है, 'है' स्वाभाविक है। **सत् तो अनुभवरूप ही है। अनुभव तो असत्का ही होता है, सत्का नहीं। आप 'नहीं' के द्वारा 'है' को देखना चाहते हैं—यह गलती है।**

मन लगनेका सबसे बढ़िया उपाय है—उपेक्षा, उदासीनता। न विरोध करें, न समर्थन करें। एकाग्रता करना चाहोगे तो मन एकाग्र नहीं होगा। पहले परमात्माका लक्ष्य करके फिर लक्ष्यको भी छोड़ दो, नहीं तो त्रिपुटी आ जायगी।

परमात्मा कैसा ही हो, वह अपना है। संसार कैसा ही हो, उसको छोड़ना है। जिसको छोड़ना हो, उसपर विचार क्या करें? जिसको ग्रहण करना हो, उसपर भी विचार क्या करें? माँ कैसी ही हो, हमारी है।

××× ××× ××× ×××

भगवान्‌ने बड़ी कृपा करके मनुष्यशरीर दिया है कि यह जीव सदाके लिये सुखी हो जाय। भोग और संग्रहके लिये मनुष्यशरीर नहीं दिया है। मनुष्यशरीरमें ही दूसरोंकी सेवा हो सकती है। मनुष्य भगवान्‌की भी सेवा कर सकता है। 'भावके भूखे हैं भगवान्'—यह भाव मनुष्यसे ही मिल सकता है। मनुष्य भगवान्‌की भी भूख मिटा सकता है!

उद्धारके लिये खास बात है—मैंपन बदलना। मैं साधक हूँ तो साधनसे विरुद्ध काम कैसे कर सकता हूँ? **दूसरोंकी तरफ देखनेवाला कभी कर्तव्यनिष्ठ हो ही नहीं सकता।** दूसरेका कर्तव्य देखना अकर्तव्य है, अनधिकार चेष्टा है।

साधन करना कोई काम-धंधा नहीं है, जिसमें छुट्टी होती है। यह तो जीवन है, श्वासकी तरह! इसलिये गीतामें आया है—'**तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर**' (८।७)।

××× ××× ××× ×××

परमात्मा हैं और वे अपने हैं। उनको छोड़कर शरीरको मुख्य मानना गलती है। भगवान्‌के अंशको तो भगवान्‌में ही स्थित होना चाहिये, पर इसने प्रकृतिके अंशको पकड़ लिया—

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति॥

(गीता १५।७)

'इस संसारमें जीव बना हुआ आत्मा स्वयं मेरा ही सनातन अंश है। परन्तु वह प्रकृतिमें स्थित मन और पाँचों इन्द्रियोंको आकर्षित करता है (अपना मान लेता है)।'

प्रकृतिका अंश तो प्रकृतिमें ही स्थित है—'**प्रकृतिस्थानि**'।

भगवान् आपको निरन्तर बुला रहे हैं, इसीलिये आप कहीं भी टिक नहीं सकते। आप जिस वस्तु, परिस्थिति, अवस्था आदिको पकड़ते हैं, वह छूट जाती है।

आप आज हृदयसे साथी और सामानको छोड़ दो तो आज ही भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी। वास्तवमें प्राप्ति तो है ही। भगवान्‌में भी यह ताकत नहीं है कि आपको अपनेसे अलग कर दें। **वह 'है' (परमात्मा) ही 'मैं' के कारण 'हूँ' हुआ है।**

'**अहं ब्रह्मास्मि**' वृत्ति है, उपासना है, तत्त्व नहीं है— '**सोहमस्मि इति बृत्ति अखंडा**' (मानस, उत्तर० ११८।१)। वृत्तिको विषयरूपी वायु बुझा सकती है— ***'अंचल बात बुझावहिं दीपा'***(मानस, उत्तर० ११८।४), ***'तबहिं दीप बिग्यान बुझाई'*** (उत्तर० ११८।७)। तत्त्व (स्वयं)-को विषयरूपी वायु नहीं बुझा सकती।

××× ××× ××× ×××

गीतामें शरणागतिकी बात मुख्य है। शरणागतिको '**सर्वगुह्यतम**' कहा गया है। जीव परमात्माका अंश है, इसलिये उसके लिये परमात्माकी शरणमें जाना बहुत सीधी-सरल बात है, जैसे बालकका अपनी माँकी गोदमें जाना! शरणमें जानेका काम जीवका है और सब पापोंसे मुक्त करनेका काम भगवान्‌का है—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८।६६)

भगवान्‌ने तो हमें शरणमें ले रखा है। केवल हमें संसारकी शरण नहीं रखनी है। शरणागत आरम्भमें ही मुक्त हो जाता है! शरणागत सिद्ध होकर साधक होता है, ज्ञानमार्गी साधक होकर सिद्ध होता है।

××× ××× ××× ×××

साधन शरीरनिरपेक्ष होता है। कारण कि साधनमें स्वयंकी जरूरत है, शरीरकी नहीं। ध्येय परमात्माका होनेपर भी जड़ शरीरका सहारा लेना गलती है। समाधितक जड़ शरीरका सहारा है! सबसे ऊँचा सहारा परमात्माका है। उद्योग तो करो, पर उद्योगका सहारा मत लो—'**मामाश्रित्य यतन्ति ये**' (गीता ७।२९)। औरका सहारा न ले, केवल भगवान्‌का सहारा ले, तब काम होगा।

एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की॥

(मानस, अरण्य० १०।४)

××× ××× ××× ×××

पारमार्थिक मार्गपर चलनेके लिये विवेककी बड़ी आवश्यकता है। गीताका आरम्भ भी विवेकसे हुआ है। **जीनेकी इच्छा और मरनेका भय अविवेकीमें ही होता है, विवेकीमें नहीं।** जो चिन्ता करते हैं, वे भी अविवेकी हैं।

ऐसा होना चाहिये, ऐसा नहीं होना चाहिये—यह इच्छा कहलाती है। **प्राणशक्ति नष्ट होनेपर भी इच्छाशक्ति रहती है, तभी आगे जन्म होता है।** इच्छाशक्ति न रहे तो दुबारा जन्म नहीं होता।

मरनेवाला तो मरेगा ही और न मरनेवाला नहीं मरेगा। गंगाजीके प्रवाहको रोकना भी मूर्खता है और प्रवाहको धक्का देना भी मूर्खता है!

××× ××× ××× ×××

अपने-अपने कर्तव्य-कर्मोंके द्वारा भगवान्‌का पूजन करना चाहिये—

स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।

(गीता १८।४५)

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।

(गीता १८।४६)

परमात्माका पूजन करनेसे संसारमें सबका पूजन हो जाता है—

यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या॥

(श्रीमद्भा० ४।३१।१४)

'जिस प्रकार वृक्षकी जड़ सींचनेसे उसके तने, शाखाएँ, उपशाखाएँ आदि सभीका पोषण हो जाता है, और जैसे भोजनद्वारा प्राणोंको तृप्त करनेसे सभी इन्द्रियाँ पुष्ट हो जाती हैं, उसी प्रकार भगवान्‌की पूजा ही सबकी पूजा है।'

कारण यह है कि परमात्मा सम्पूर्ण प्राणियोंके सनातन तथा अव्यय बीज हैं—'**बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्**' (गीता ७।१०), '**बीजमव्ययम्**' (गीता ९।१८)।

आत्मज्ञान न हो तो पढ़े-लिखे और अनपढ़—दोनों मनुष्य समान हैं—

पढ़े अपढ्ढ सारखे, जो आतम नहिं लक्ख।
शिल सादी चित्रित 'अखा', दो डूबण पक्ख॥

सभी आश्रमोंका लक्ष्य परमात्मप्राप्ति ही है। ब्रह्मचर्याश्रम सभी आश्रमोंकी नींव है। मकान दीखता है, पर नींव नहीं दीखती। अच्छे-अच्छे महात्माओंकी नींव (बालकपना) दीखती नहीं, छिपी रहती है।

××× ××× ××× ×××

हम यहाँ आये हैं और जानेवाले हैं—यह जागृति हर समय रहनी चाहिये। ऐसा भाव रहनेसे दुर्गुण-दुराचार नहीं होंगे, अन्याय नहीं होगा। **स्थायी रहनेका भाव ही अनर्थ करता है।**

जानेके समयका कोई पता नहीं है। रहनेका तो भरोसा नहीं और जानेकी तैयारी नहीं—यह बड़ी गलतीकी, आश्चर्यकी बात है!

××× ××× ××× ×××

वर्तमान समय बहुत बढ़िया भी है और बहुत घटिया भी! बढ़िया इसलिये है कि हमें गीताप्रेसकी पुस्तकें, गीता, रामायण आदि ग्रंथ पढ़ने-सुननेको मिल गये, सत्संग मिल गया। घटिया इसलिये है कि हमारी सरकार धर्मको अधर्म तथा अधर्मको धर्म मान रही है! सन्तति-निरोधको 'परिवार-कल्याण' और पशुओंके नाशको 'मांसका उत्पादन' कहा जाता है! सबसे दुर्लभ मनुष्यशरीरको उत्पन्न होनेसे ही रोक रहे हैं! **ऐसा दीख रहा है कि कोई भयंकर युद्ध होगा, महान् संहार होगा। उसीकी तैयारी (गर्भपात-जैसे महापाप) हो रही है।** इतना पाप, अन्याय ज्यादा चलेगा नहीं।

सभी भाई-बहन भगवान्‌के भजनमें लग जाओ। उनकी शक्तिसे ही काम होगा। और कोई उपाय नहीं है। रात-दिन

भगवान्‌को पुकारो, नामजप करो, गीता-रामायणका पाठ करो, दूसरोंकी सेवा करो।

×××　　×××　　×××　　×××

जो भी दीखे, उसमें परमात्मा है—यह सबसे सुगम ध्यान है। **मेरेको सुख मिल जाय—यह पापकी जड़ है।**

विदेशी गाय तो नाश करनेवाली है।

×××　　×××　　×××　　×××

भोगों और रुपयोंमें लगे हुए मनुष्य परमात्मप्राप्तिका विचार भी नहीं कर सकते। रुपयोंके लोभसे आज बड़ा अनर्थ हो रहा है! सरकारका इष्टदेव मुसलमान हैं और लोगोंका इष्टदेव रुपये हैं। **अभी हिन्दू समाज और गायोंपर जितनी आफत है, उतनी अन्य किसीपर नहीं।**

ब्रह्मचर्याश्रम अपनी संस्कृतिकी रक्षा करनेवाली चीज है।

कामसे अधिक समय हो और खर्चेसे अधिक पैसे हों तो ऐसे मनुष्यका उद्धार होना कठिन है।

विद्या प्राप्त करनेका बढ़िया उपाय है—गुरुकी आज्ञाका पालन करना।

×××　　×××　　×××　　×××

मनुष्यशरीर मल-मूत्र पैदा करनेकी फैक्ट्री है। परन्तु इसमें एक गुण है कि जीव अपना उद्धार कर सकता है। यह गुण देवताओंमें भी नहीं है, जबकि देवताओंका शरीर दिव्य होता है। उनको मनुष्यशरीरसे दुर्गन्धि आती है। गायका शरीर बहुत पवित्र है, उसका गोबर-गोमूत्र भी पवित्र है, पर उसमें भी कल्याण नहीं होता।

जो जिस वस्तुका दुरुपयोग करता है, उसे वह वस्तु पुनः

नहीं मिलेगी। सदुपयोग करनेसे पुनः वह वस्तु मिलती है। यदि कोई मनुष्यशरीरका दुरुपयोग करेगा तो उसे मनुष्यशरीर नहीं मिलेगा। मनुष्यशरीर दुरुपयोग करनेके लिये नहीं मिला है। **परिवार-नियोजन मानवजीवनका महान् दुरुपयोग है! आप कहते हैं कि अन्न नहीं मिलेगा, मैं छाती ठोककर कहता हूँ कि इस पापके कारण अन्न तो दूर रहा, पानी भी नहीं मिलेगा!**

वास्तवमें अच्छाई सब भगवान्‌की है, बुराई हम लोगोंकी है। जैसे पानी नलमें दीखता है, पर वह वहाँसे नहीं आता, टंकीसे आता है, ऐसे ही अच्छी बात भगवान्‌की कृपासे आती है।

बीजको उबाल दिया जाय या भून दिया जाय तो फिर बीजसे कुछ पैदा नहीं होता। ऐसे ही मदिरा धर्मके अंकुरको जला देती है। मदिरा पीनेवाला तत्त्वचिन्तन नहीं कर सकता।

××× ××× ××× ×××

मनुष्यशरीर मिल गया, इसलिये इसकी दुर्लभताका पता नहीं लगता। अपना समय निरर्थक मत जाने दें। भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! आपको भूलूँ नहीं'। मेरे द्वारा किसीकी सेवा बन जाय—यह भाव रखो। जितनी सेवा आप कर सकते हैं, वही आपकी पूरी सेवा है और उतनी ही आशा दुनिया आपसे रखती है। जितना आप सुगमतासे कर सको, उतना उपकार करो और भगवान्‌को याद करो। भगवान् याद करनेमात्रसे प्रसन्न हो जाते हैं—**'अच्युतः स्मृतिमात्रेण'**। भाव सबके हितका रखो और याद भगवान्‌को करो। अपनी शक्तिका सदुपयोग करो तो मुक्ति हो जायगी। अपने कर्मोंसे भगवान्‌का पूजन करो—**'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य'** (गीता १८। ४६)।

यह नियम है कि असमर्थ मनुष्य ही दूसरेको असमर्थ

बनाता है। कमजोर दूसरेको कमजोर बनाता है। समर्थ दूसरेको भी समर्थ बनाता है।

××× ××× ××× ×××

समय, समझ, सामग्री और सामर्थ्य—ये मिली हुईं और छूटनेवाली चीजें हैं। इनको यदि भगवान्‌के अर्पण कर दें तो भगवान्‌की प्राप्ति हो जाय। इनको भगवान्‌के अर्पण करना 'भक्तियोग' है। प्रकृतिके अर्पण करना 'ज्ञानयोग' है। संसारके अर्पण करना 'कर्मयोग' है। अपने अर्पण कर दें तो यह 'जन्ममरणयोग' हो गया! जिसकी चीज है, उसको दे दो तो मुक्ति हो जायगी।

मानवशरीर लेनेके लिये नहीं है, देनेके लिये है। हमपर सभी प्राणियोंका ऋण है; क्योंकि सभीसे हमारा उपकार होता है। इसलिये सबकी सेवा करो।

××× ××× ××× ×××

मानवशरीर भगवान्‌की कृपासे मिलता है। चौरासी लाख योनियोंमें भटकते हुए जीवको भगवान् बीचमें ही कृपा करके मानवशरीर देते हैं। यह अवकाश देते हैं। यह शरीर देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। शंकराचार्यजी लिखते हैं—

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः॥

(विवेकचूड़ामणि ३)

'भगवत्कृपा ही जिनकी प्राप्तिका कारण है, वे मनुष्यत्व, मुमुक्षुत्व और महापुरुषोंका संग—ये तीनों ही दुर्लभ हैं।'

बिना हेतु प्राणिमात्रका हित करनेवाले दो ही हैं—भगवान् और उनके भक्त—

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥

(मानस ७। ४७। ३)

भगवान्‌की वाणी गीता है, भक्तकी वाणी रामायण है। शिक्षा दो प्रकारसे दी जाती है—कहकर और करके। गीतामें कहकर शिक्षा दी गयी है और रामायणमें करके शिक्षा दी गयी है। भगवान्‌ने बड़ी कृपा की जो हमारा इस समयमें जन्म हो गया और गीताप्रेसकी पुस्तकें पढ़नेको मिलीं!

प्रत्येक परिस्थितिमें भगवान्‌की कृपा है। अनुकूल परिस्थितिमें भी दया है, प्रतिकूल परिस्थितिमें भी दया है। माँ लड्डू सब बालकोंको देती है, पर थप्पड़ अपने बालकको ही लगाती है। अपनेपनमें जो प्यार है, वह लड्डूमें नहीं है। भगवान्‌की कृपाकी तरफ ही देखते रहें—**'तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः'** (श्रीमद्भा० १०। १४। ८)। दुःख (प्रतिकूल परिस्थिति) आनेपर पुराने पापोंका नाश होता है और नया विकास होता है।

भगवान्‌की कृपाको देखो, सुख-दुःखको मत देखो। माता कुन्तीने विपत्तिका वरदान माँगा था*। परिस्थितिको मत देखो, उसे भेजनेवाले (दाता)-को देखो।

संसारका वियोग नित्य है और भगवान्‌का योग नित्य है। सर्वसमर्थ भगवान्‌में यह ताकत नहीं कि वे जीवसे अलग हो जायँ!

---

* विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम्॥

(श्रीमद्भा० १। ८। २५)

'हे जगद्गुरो! हमारे जीवनमें सर्वदा पद-पदपर विपत्तियाँ आती रहें, जिससे हमें पुनः संसारकी प्राप्ति न करानेवाले आपके दुर्लभ दर्शन मिलते रहें।'

गीतामें **'वासुदेवः सर्वम्'** को सबसे ऊँचा ज्ञान बताया गया है। आप देखोगे तो दीखने लग जायगा। पहले भी भगवान् थे, पीछे भी भगवान् रहेंगे और बीचमें भी भगवान् ही हैं— ऐसा मान लो तो फिर कहाँ बन्धन है?

संसारसे सुख लेनेवाला कभी दुःखसे बच सकता ही नहीं। दूसरोंको सुख देनेवाले, सेवा करनेवालेके पास दुःख फटक सकता ही नहीं।

××× ××× ××× ×××

सत्का भाव-ही-भाव है और असत्का अभाव-ही-अभाव है। यह वास्तविकता है। जिसको छोड़ना है, वह नित्य-निरन्तर छूट रहा है। जिसको प्राप्त करना है वह नित्य-निरन्तर प्राप्त है। इसमें कोई परिश्रम, उद्योग नहीं है।

असत्से असत् ही दीखेगा, सत् कैसे दीखेगा?

××× ××× ××× ×××

जो प्राप्त है, उसीको प्राप्त करना है। जो निरन्तर अभावमें जा रहा है, उसीका त्याग करना है। नित्यप्राप्त परमात्माको ही प्राप्त करना है और नित्यनिवृत्त संसारकी ही निवृत्ति करनी है। जानेवालेको रहनेवाला ही देख सकता है। संसारका नित्यवियोग ही सत्य है। परमात्माका नित्ययोग ही सत्य है। **जानेवाली वस्तुओंका सदुपयोग करें—इतना ही काम है।**

'है' में सबकी स्वाभाविक स्थिति है। 'नहीं' से ही 'नहीं' दीखता है। 'है' से 'नहीं' दीखता नहीं। हमें सबके अभावका अनुभव होता है, पर अपने अभावका अनुभव किसीको नहीं होता—**'पाया खोया कुछ नहीं, ज्यों-का-त्यों भरपूर'**!

××× ××× ××× ×××

केवल बदलनेका नाम संसार है। संग्रह और सुखकी इच्छा करनेसे अनित्य संसार भी नित्य दीखने लगता है। **वस्तु मिलनेपर चित्तमें प्रसन्नता होती है—यह सुखभोग है।** जड़ताके सुखकी आसक्ति बाँधनेवाली है।

हम शरीरको और उसकी अवस्थाओंको जानते हैं। अतः हम शरीर तथा अवस्था नहीं हैं। जब जाननेमें फर्क नहीं पड़ता तो फिर जाननेवालेमें कैसे फर्क पड़ेगा?

××× ××× ××× ×××

मनुष्य अपनी वास्तविकताकी ओर खयाल नहीं करता कि मैं किस लिये आया हूँ? इसे जाने बिना कर्तव्यपरायणता कैसे होगी? पहले उद्देश्य बनता है, पीछे यात्रा शुरू होती है। मनुष्यशरीर परमात्मप्राप्तिके लिये, सदाके लिये सुखी होनेके

गीताप्रेसके कर्मचारी यदि तत्परतासे काम करें तो यहाँसे छपी पुस्तकको देखनेसे लोग कर्तव्यपरायण हो जायँ!

बेकारी नहीं बढ़ी है, बेकार आदमी बढ़े हैं।

कोई पूछे कि दुनिया कैसी है? तो इसका उत्तर है—आप जैसी! भले आदमीके लिये दुनिया भली है, बुरे आदमीके लिये बुरी।

××× ××× ××× ×××

अपने स्वभावका सुधार करना है। केवल स्वभाव ही बिगड़ा है। स्वभाव बिगड़नेमें कारण है—असावधानी।

जो अपने अनुभवका आदर नहीं करता, वह शास्त्र, गुरु आदिके वचनोंका भी आदर नहीं कर सकता। 'मैं वही हूँ'—यह सबका अनुभव है। हम वही हैं, पर आदर देते हैं बदलनेवालेको—यही असावधानी है। धन, मान, आदर आदि कोई भी चीज ठहरनेवाली नहीं है। आप अपने ही द्वारा कमाये हुए रुपयोंके वशमें हो जाते हैं! अपने ही सामने आये हुए स्त्री-पुत्रोंके वशमें हो जाते हैं!

एक मार्मिक बात है कि आप अपनेमें ही स्थित (स्वस्थ) नहीं रह सकते, फिर और क्या कर सकते हैं?

संयोग-वियोगमें संयोग अनित्य है, वियोग नित्य है। सबका वियोग होगा—यह सन्देहरहित ज्ञान है। जो असम्भव बात है, उसकी इच्छा ही क्यों करें? आज ही यह विचार कर लें कि हम रोयेंगे नहीं। यह सत्संग-पण्डाल अभी भरा है, फिर खाली हो जायगा। संसारका वियोग नित्य है। नित्यको स्वीकार कर लें। परमात्माके साथ योग नित्य है, चाहे आप मानें या न मानें।

जो जानेवाला है, उसको छोड़ दो तो स्वभाव सुधर जायगा। 'मम' से बन्धन है, 'न मम' से मुक्ति है।

सब कुछ भगवान्‌के अर्पण कर दें—यह 'विश्वजित् याग' है।

××× ××× ××× ×××

भगवान्‌के बिना रहा न जाय—यह खास बात है। 'विषयभोग, निद्रा, हँसी, जगत्-प्रीति, बहु बात'—ये पाँचों सुहायें नहीं।

मनुष्यमें तीन इच्छाएँ रहती हैं—करनेकी इच्छा, जाननेकी इच्छा और पानेकी इच्छा। हम जीते रहें—यह जीवन पानेकी इच्छा है। हमें कृतकृत्य, ज्ञातज्ञातव्य और प्राप्तप्राप्तव्य होना है। कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोगसे ये तीनों पूरे हो जाते हैं। अपने लिये कुछ न करनेसे 'करना' पूरा हो जायगा। स्वरूपको जाननेसे 'जानना' पूरा हो जायगा। प्रभुको पानेसे 'पाना' पूरा हो जायगा। हम संसार, स्वरूप और परमात्मा—तीनोंके लिये उपयोगी हो जायँ।

यह सिद्धान्त है कि जो किसी समय नहीं मिलता, वह कभी नहीं मिलता।

कामनाके कारण ही कमी है। कामना न हो तो कुछ बाकी नहीं रहेगा। सुखकी इच्छा ही परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिमें बाधक है। सुखकी इच्छामें ही सम्पूर्ण दुःख हैं। सुखकी इच्छा छोड़ दें तो दुःख पासमें नहीं आयेगा। **संसारकी इच्छा करोगे तो नयी-नयी विपत्ति आयेगी।** इच्छा छोड़ दो तो संसारकी चीजें स्वतः आयेंगी। **चाहना छोड़ दें तो आवश्यक वस्तु स्वतः आ जायगी।** या तो केवल एक परमात्माकी इच्छा करो, या

कोई भी इच्छा मत करो, न संसारकी, न परमात्माकी। कामना न छूटे तो व्याकुल होकर भगवान्‌को पुकारो, छूट जायगी। सन्तान सबको प्रिय होती है तो क्या हम भगवान्‌को प्रिय नहीं हैं? भगवान् कहते हैं— ***'सब मम प्रिय सब मम उपजाए'*** (मानस, उत्तर० ८६।२)।

सत्संग अध्यात्मविद्याका विद्यालय है।

××× ××× ××× ×××

साधन स्वाभाविक होना चाहिये। करनेसे साधन बढ़िया नहीं होता। मैं साधक हूँ—ऐसे अहंता बदल लें तो साधन स्वाभाविक होगा। दूसरे साधक नहीं हैं—ऐसे देखेंगे तो अभिमान आ जायगा। हमें दूसरोंको न देखकर अपना साधन करना है। साधन वह होता है, जो निरन्तर हो।

जो व्यापारके नामसे चाहे कोई काम कर ले और औषधिके नामसे चाहे कुछ ले ले, वह साधक नहीं हो सकता।

××× ××× ××× ×××

संसारकी प्राप्ति है ही नहीं, उसकी प्राप्ति भूलसे मान लेते हैं। परमात्माकी अप्राप्ति कभी हुई नहीं, उसकी अप्राप्ति भूलसे मान लेते हैं। संसार कभी प्राप्त होता ही नहीं। संसारमात्र निरन्तर बहता हुआ मौतकी तरफ जा रहा है। संसार बहता है, परमात्मतत्त्व रहता है। बालकपना आपने कब छोड़ा था?

संसारको स्थायी माननेसे ही भोग और संग्रहकी इच्छा होती है। गाय, गधा, चाण्डाल आदि तो नहीं हैं, पर उन सबमें 'है'-रूपसे एक ही परमात्मा हैं। भगवान् खम्भेमें थे, तभी तो खम्भेसे प्रकट हुए। प्राणिमात्रमें भगवद्भाव करो, फिर

वे अन्तःकरणसे दीखने लग जायँगे। आँखोंसे भले ही न दीखें, पर अन्तःकरण (मन-बुद्धि)-से दीखेंगे।

××× ××× ××× ×××

'संसार है'—इसमें 'संसार' अलग है, 'है' अलग है। इनको अलग करना है—इतनी ही बात है। संसारको नाशवान् समझते हुए भी उसका आदर करते हैं, उसको महत्त्व देते हैं—यह गलती है, अपने ही सिद्धान्तका खण्डन है! हमारे बालकपनका संसार अलग था, वह अब कहाँ रहा?

काम करते-करते बीचमें थोड़ी देर ठहर जाओ कि 'एक परमात्मतत्त्व ही परिपूर्ण है'।

××× ××× ××× ×××

जीवमात्रमें किसीका सहारा लेनेकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है; क्योंकि अंशीकी तरफ अंशका आकर्षण स्वाभाविक होता है। परन्तु यह उलटे संसारमें फँस गया। वास्तविक चाहना तो परमात्माकी ही है, पर संसारमें लगा दी। जैसे अग्निसे अलग होनेपर कोयला काला हो जाता है, ऐसे ही परमात्मासे अलग होते ही यह दुःखी हो जाता है। सर्वसमर्थ भगवान्में भी शरणागत भक्तका त्याग करनेकी सामर्थ्य नहीं है। जीव भगवान्के सिवाय जिस-जिसको पकड़ता है, सहारा लेता है, उसको भगवान् टिकने नहीं देते।

आत्मज्ञान करना हो तो 'मैं हूँ'—इसमें 'मैं' को छोड़ दो। 'मैं' नहीं रहेगा तो 'हूँ' मिट जायगा, 'है' रह जायगा—

ढूँढ़ा सब जहां में, पाया पता तेरा नहीं,
जब पता तेरा लगा तो अब पता मेरा नहीं।

आत्मा एक ही है। आप अपनेको अलग मानते हो, यही अलगपना है।

श्रोता—यदि सबके भीतर एक आत्मा है तो एकको पीड़ा होनेसे सबको पीड़ा क्यों नहीं होती?

स्वामीजी—शरीरमें आप एक हो, फिर एक अंगुलीमें पीड़ा होनेपर और जगह पीड़ा क्यों नहीं होती?

××× ××× ××× ×××

यह सारा संसार 'अहम्' पर टिका हुआ है। 'अहम्' अपरा प्रकृति है। **'वासुदेवः सर्वम्'**—यह तत्त्व है, और संसार जीवकी कल्पना है—**'ययेदं धार्यते जगत्'** (गीता ७।५)। कर्मयोग अहम्को शुद्ध करता है, ज्ञानयोग अहम्को मिटाता है और भक्तियोग अहम्को बदलता है। अहम्को बदलना सुगम है और सबको आता है। अतः भक्तियोग सुगम है। निर्गुणका 'रूप' सुगम है, भक्तिका 'मार्ग' सुगम है। निर्गुणका मार्ग कठिन है—

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।

(मानस, उत्तर० ७३ ख)

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा।

(मानस, उत्तर० ४६।१)

ग्यान पंथ कृपान कै धारा।

(मानस, उत्तर० ११९।१)

भक्तिमें भगवान् अपने भक्तका अहम् मिटा देते हैं (गीता १०।१०-११)।

संसारमें ममता होती है, भगवान्में आत्मीयता होती है।

××× ××× ××× ×××

अगर अहंता बदल दी जाय तो सब काम ठीक हो जाय! **पूरा संसार एक 'मैंपन' (अहंता) पर ही टिका हुआ है।** भक्तके लिये 'सब जग ईश्वररूप है'।

भगवान्‌का काम समझकर अपने कर्तव्यका पालन करो। परन्तु अपने कामकी बिक्री मत करो। अपने कर्तव्यका पालन समझकर मैं व्याख्यान देता हूँ और माताएँ अपना कर्तव्य समझकर रोटी देती हैं। यदि बिक्री करें तो मेरा व्याख्यान बिक्री हो जाय, माताओंकी रोटी बिक्री हो जाय! बिक्री करनेसे क्या पुण्य होगा?

मनुष्य तकलीफ पाकर ऊँचा होता है, आराम पाकर नहीं। **जिस जीवनमें बाधाएँ नहीं आयीं, वह जीवन ही नहीं है!** जितना आराम दुर्योधनने भोगा, उतना युधिष्ठिरने भोगा क्या? परन्तु युधिष्ठिरका नाम लेनेसे धर्म बढ़ता है—'**धर्मो विवर्धति युधिष्ठिरकीर्तनेन**'।

छुआछूत मिटाना हो तो हृदयकी छुआछूत मिटाओ।

क्रोध दो कारणोंसे होता है—कामना और अभिमान। यदि क्रोध आ जाय तो हृदयसे 'हे नाथ! हे नाथ!!' पुकारो।

××× ××× ××× ×××

भगवान्‌की विशेष कृपासे मनुष्यशरीर मिलता है। उसमें भी बहुत विशेष कृपा होनेसे भगवद्विषयक जिज्ञासा होती है। फिर और भी विशेष कृपा होनेपर सत्संग मिलता है। नाशवान्‌का आदर करनेसे मनुष्य नाशकी तरफ जाता है, पर स्वयं (आत्मा)-का नाश होता नहीं—यह आफत है!

निष्क्रियतासे ताकत आती है, पर क्रियासे ताकत नष्ट होती है। निष्क्रियतासे थकावट होती ही नहीं। यही सहजावस्था है। इसमें ऐसा विलक्षण पारमार्थिक आनन्द है, जिसमें कोई विकार नहीं है।

परमात्मप्राप्तिमें कठिनता नहीं है, प्रत्युत संसारका राग छोड़नेमें कठिनता है। व्यसनीको व्यसन छोड़ना कठिन होता है, पर आपको क्या कठिन है?

लोग समझते हैं कि पैसा होनेसे हम स्वतन्त्र हो जायँगे। **वास्तवमें पैसा होनेसे स्वतन्त्रता नहीं होती, प्रत्युत पैसोंकी गुलामी होती है।**

×××　　　×××　　　×××　　　×××

समाधिसे भी बड़ी एक चीज है। वह है—अपने-आपमें स्थित होना। चित्तवृत्तिनिरोधसे भी स्वरूपमें स्थिति होती है। 'मैं हूँ'—यह स्वतः-स्वाभाविक है। सबके भाव तथा अभावका अनुभव होता है, पर अपने अभावका अनुभव कभी किसीको नहीं होता।

जबतक जीव प्रकृतिमें स्थित होता है, तबतक अपने गुणातीत स्वरूपका अनुभव नहीं होता। गुणातीत होना नहीं है, स्वतः है। 'मैं हूँ'—ऐसा करके कुछ भी चिन्तन न करे। चिन्तनरहित होनेसे स्वस्थ है, गुणातीत है। होनापन हमारा स्वरूप है। प्रकृतिमें स्थित होनेपर भी स्वरूपमें स्थिति स्वतः है। यह जीवन्मुक्तकी स्थिति है। **जीवन्मुक्त स्वतः है।** 'मैं'-पनसे अलग होकर स्वयंमें स्थित होना है। जो स्वयंमें स्थित है, वही तत्त्वदर्शी है।

'मैं हूँ' में 'मैं' को छोड़ दे और 'हूँ' में स्थित हो जाय—यह हुआ अंश। इससे आगे अंशी है। उस अंशीकी शरण हो जाय।

×××　　　×××　　　×××　　　×××

अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितिके द्वारा पुण्य-पापोंका

अपने-आप नाश हो रहा है। अनुकूलता-प्रतिकूलताकी सत्ता हो तो वह ठहरे, पर उसकी सत्ता है ही नहीं। गंगाजीकी तरह सब संसार निरन्तर बह रहा है। कोई भी चीज रहनेवाली नहीं है।

भक्तके लिये प्रतिकूलतामें विशेष भगवत्कृपा होती है। **यदि हम प्रतिकूलतामें दुःखी हो जाते हैं तो हमने कृपाको कहाँ माना?** प्रतिकूलतामें विशेष हित और अपनापन भरा हुआ है। **जो शरीरकी अनुकूलता-प्रतिकूलतामें राजी-नाराज होता है, वह हाड़-मांसका भक्त है, भगवान्‌का नहीं।** बाजारसे कोई वस्तु खरीदते हैं तो चखकर लेते हैं, पर वैद्यकी दवा चखकर नहीं लेते। वैद्य जो दवा दे, वही लेनी पड़ती है।

अपनी मनचाही तो किसीकी भी नहीं हुई। सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-ने एक बार कहा कि मेरी सदा मनचाही ही होती है! पूछनेपर उन्होंने कहा कि मैंने भगवान्‌के मनमें अपना मन मिला लिया!

कर्मयोग-ज्ञानयोगमें समता है, भक्तिमें विशेषता है। भक्तिमें प्रतिक्षण वर्धमान रस है।

हरदम, हर रूपोंमें हमें भगवान् ही मिलते हैं!

××× ××× ××× ×××

बालकका माँकी तरफ स्वतः आकर्षण होता है। पत्थरका पृथ्वीकी तरफ स्वतः आकर्षण होता है। इसी तरह जीवका भी परमात्माकी तरफ स्वतः आकर्षण होता है। परन्तु संसारको महत्त्व देनेके कारण इसका आकर्षण जड़ताकी तरफ होने लगता है, पर यह स्वाभाविक आकर्षण नहीं है। अतः इसके परिणाममें जीव दुःख ही पाता है। उसे सन्तोष नहीं होता। परन्तु परमात्माकी

तरफ चलनेसे सन्तोष हो जाता है। शान्ति परमात्माकी तरफ चलनेसे अथवा संसारका त्याग करनेसे ही मिलेगी, तो फिर देरी क्यों?

परमात्माकी तरफ चलनेवाला मनुष्य प्रत्येकका मित्र बन जाता है, सबका आदरणीय हो जाता है। चोर-डाकू भी उसका आदर करते हैं!

××× ××× ××× ×××

ज्ञानमार्गमें द्वैत है और भक्तिमार्गमें अद्वैत है। कारण कि ज्ञानमार्गमें विवेक है, सत् और असत् दो हैं, पर भक्तिमें एक परमात्मा-ही-परमात्मा हैं—**'सदसच्चाहम्'** (गीता ९। १९)। शक्ति शक्तिमान्‌के अधीन है, पर शक्तिमान् शक्तिके अधीन नहीं है।

गीताका अन्तिम सिद्धान्त 'भक्ति' है। ब्रह्म समग्र भगवान्‌का ही एक अंग है। प्रेम-तत्त्व ज्ञानसे विलक्षण है। ज्ञान केवल अज्ञान मिटाता है, प्रेममें आकर्षण होता है। ज्ञानका रस अखण्ड है, प्रेमका रस प्रतिक्षण वर्धमान है।

××× ××× ××× ×××

एक बदलनेवाला है, एक न बदलनेवाला है। यह सबके अनुभवकी बात है। बदलनेवालेको न बदलनेवाला ही जानता है। अवस्थाओंको जाननेवाला अवस्थाओंसे अलग होता है। मैं रहता हूँ, अवस्थाएँ बदलती हैं—यह विवेक है। विवेकको महत्त्व दें तो यह स्पष्ट हो जायगा।

अनुकूलता-प्रतिकूलता आती-जाती है, आप रहते हो। उनको लेकर सुखी-दु:खी होना मूर्खता है। संसारका वियोग नित्य है। वियोगको आदर दो तो निहाल हो जाओगे।

सत्संग अर्थात् सत्‌का संग तब होगा, जब अनुभव करेंगे। सीखी हुई बातें किस कामकी? श्रवण शास्त्रकी बातोंका करेंगे, मनन विषयोंका करेंगे, निदिध्यासन रुपयोंका करेंगे तो साक्षात्कार दु:खोंका होगा! **सीखनेके लिये सत्संग नहीं है।**

××× ××× ××× ×××

कर्मयोगसे शान्ति मिलती है; क्योंकि अशान्ति नाशवान् पदार्थोंके संगसे होती है। ज्ञानयोगसे स्वरूपमें स्थिति होती है। **भक्तियोगमें शान्ति और स्वरूपमें स्थिति—दोनों रहते हैं, पर साथ ही भगवान्‌की ओर विशेष आकर्षण रहता है।** भक्ति, विरक्ति तथा भगवत्प्रबोध—तीनों एक साथ चलते हैं। भक्तिमें ये तीनों बातें हो जाती हैं।

शरीरमें ममता रहेगी तो समता कैसी होगी? नहीं हो सकती—*'तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार'* (दोहावली ९४)।

प्रेम ऐसी अग्नि है, जिसमें पड़नेवाला तो आनन्दमें रहता है, पर देखनेवाला जलता है!

जो सत्संगमें नहीं लगा है, वह सत्संगकी महिमा नहीं जानता।

प्रेमाभक्तिकी प्राप्तिके लिये 'करना' नहीं है, प्रत्युत 'रोना' है। तात्पर्य है कि प्रेमाभक्तिकी प्राप्ति उत्कट अभिलाषासे होती है। बालकके पास रोनेके सिवाय और क्या बल है? रोना है—निर्बलताकी आखिरी हद। *'निर्बल के बल राम'*। रोना कब आयेगा? रोना आयेगा संसारका रोना (कामना) छोड़नेसे।

भक्तोंके, सन्तोंके संगसे भक्ति मिलती है।

××× ××× ××× ×××

'चुप साधन' तो बहुत बढ़िया है, पर समझनेमें बड़ा कठिन है। तत्त्वकी प्राप्ति क्रियाके द्वारा नहीं होती। अप्राप्त वस्तुके लिये क्रिया होती है। **प्राप्त तत्त्वके लिये क्रिया करोगे तो तत्त्वसे दूर हो जाओगे।** संसार तो प्राप्त है, परमात्मा अप्राप्त है—यह हमसे भूल हो गयी है। परमात्मा कभी अप्राप्त हो सकते ही नहीं। परमात्मासे रहित कोई हो सकता ही नहीं। बर्फमेंसे पानी निकालनेपर बर्फ कैसे रह जायगी? परमात्मा सबको समान रूपसे प्राप्त हैं, चाहे पापी हो या पुण्यात्मा। सुईकी नोक-जितनी जगह भी परमात्मासे खाली नहीं है अर्थात् जगह तो खाली है, पर परमात्मासे खाली नहीं है। जो मिट रहा है, उसे मिटानेकी चेष्टा करना भी गलती है और टिकानेकी चेष्टा करना भी गलती है।

कामना होती है संसारकी सत्ता माननेसे। संसार निरन्तर मिट रहा है, फिर कामना कैसे होगी? चुप साधनसे कामना मिट जाती है। कुछ दिन चुप साधन करनेसे एक बल आ जायगा, जिससे राग-द्वेष, अनुकूलता-प्रतिकूलताका असर कम पड़ेगा।

कामना करनेसे वस्तु मिलती है ही नहीं। मिलनेवाली वस्तु बिना कामनाके भी मिलेगी। हमें मिलनेवाली वस्तु कोई दूसरा नहीं ले सकता—'**यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्**'। कामना मन-बुद्धिमें होती है, आपमें नहीं। आप उसे पकड़ लेते हो। स्वरूपमें कोई विकार नहीं है। जितने विकार हैं, सब अन्तःकरणमें आते हैं। आप सुख-दुःखके भोक्ता (भोगी) बनते हो, तभी ये विकार आते हैं।

चुप साधनमें शान्ति मिले तो उसकी भी उपेक्षा करो।

उपेक्षा नहीं करोगे तो भोग होगा। चुप साधन करते हुए नींद आती हो तो आप चुप साधनके अधिकारी नहीं हो। उस समय नामजप आदि करो।

सत्संगमें तात्त्विक बातोंको समझनेसे जो लाभ होगा, वह क्रियासे नहीं होगा, बद्रीनाथ आदि तीर्थोंमें जानेसे नहीं होगा।

जो हमारा कहना नहीं मानता, उसमें ममता, अपनापन छोड़ दो तो वह शुद्ध हो जायगा। अशुद्धि ममतासे आती है। **ममता छोड़नेसे आपको शान्ति मिलेगी और उसका सुधार होगा।**

त्याग उसीका होता है, जो अपना नहीं है। प्राप्ति उसीकी होती है, जो अपना है।

××× ××× ××× ×××

सारा संसार भगवान्‌का ही स्वरूप है—'**वासुदेवः सर्वम्**'। **संसारको भगवान्‌का स्वरूप देखनेमें किसी प्रयासकी अथवा विवेककी जरूरत नहीं है।** सीधे-सरलभावसे देखें। एक भगवान् ही सब रूपोंमें हुए हैं। परमात्मा ही आदिमें थे, वही अन्तमें रहेंगे, वही बीचमें भी रहते हैं। बादलोंमें आकाशकी तरह सबमें परमात्मा-ही-परमात्मा परिपूर्ण हैं।

××× ××× ××× ×××

एक तत्त्वप्राप्तिका पक्का ध्येय बननेपर कामनाका त्याग बहुत सुगम हो जाता है। धन आदि पदार्थ कामनासे नहीं मिलते, प्रत्युत विधानसे मिलते हैं। पदार्थोंका सम्बन्ध कामनाके साथ नहीं है। कामना करनेसे वस्तु मिल ही जायगी—ऐसी बात नहीं है। यह नियम नहीं है। परमात्माकी प्राप्ति इच्छाके साथ सम्बन्ध रखती है, पदार्थोंकी प्राप्ति नहीं।

पारमार्थिक उन्नति भाव और विवेकसे होती है। सगुणकी प्राप्ति भावसे और निर्गुणकी प्राप्ति विवेकसे होती है।

श्रीशरणानन्दजी महाराज नये दार्शनिक थे। उनका दर्शन छहों दर्शनोंसे निराला है। उनकी बातको कोई काट नहीं सकता, जबकि अन्य दर्शनोंकी बातें एक-दूसरेको काटती हैं। परन्तु लोगोंने श्रीशरणानन्दजी महाराजकी बातोंको कितना आदर दिया? सच्ची जिज्ञासा नहीं है।

आप संसारकी स्थितिको बनाये रखना चाहते हैं—यह सर्वथा असम्भव बात है। यही बाधा है।

××× ××× ××× ×××

यह विचार करें कि हमारा खास काम क्या है? ऊँची-से-ऊँची स्थितिको प्राप्त करनेके लिये उद्योग करना चाहिये। केवल उसके लिये उत्कण्ठा जाग्रत् करनी है। मनुष्यको अपना उद्योग करनेकी जिम्मेवारी है, फल-प्राप्तिमें नहीं। असली तत्त्वकी प्राप्तिके लिये तत्परतासे लग जाना चाहिये। अपना समय, सामर्थ्य, सामग्री, समझ बचाकर न रखें। फिर पश्चात्ताप नहीं करना पड़ेगा। जो काम बढ़िया-से-बढ़िया दीखता हो, उसीमें तत्परतासे लग जाना चाहिये। अपना उद्योग पूरा करनेपर फिर पश्चात्ताप नहीं होगा।

××× ××× ××× ×××

चुप साधनमें तो अहम् भी नहीं रहता, फिर मन और प्राणोंकी गतिका खयाल कैसे रहेगा? कुछ भी मत करो तो परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। 'करने' से ही प्रकृतिके साथ सम्बन्ध होता है। कुछ भी करोगे तो अहम्‌के साथ सम्बन्ध रहेगा।

चुप साधनमें ध्यान बाधक है। किसी भी वस्तुका ध्यान न हो। इंग्लैण्ड जितना दूर है, उतने ही दूर मन-बुद्धि भी हैं। स्वरूपसे अलग कोई हो सकता ही नहीं, बोध भले ही न हो। चुप साधनमें नामजप छूट जाय तो कोई दोष नहीं है, छोड़ना दोष है। चुप साधनमें तो सब कुछ छूट जायगा।

मैं-पन चेतनके बिना नहीं रह सकता, पर चेतन मैं-पनके बिना रह सकता है।

जड़-चेतनके तादात्म्यमें कामना जड़-अंशमें है। ऐसे ही **सृष्टि-रचनाकी इच्छा प्रकृति-अंशमें ही होती है, शुद्ध तत्त्वमें नहीं।**

चौदह भुवन, मात्र संसार 'अहम्' पर टिका हुआ है। **जबतक संसारकी किंचिन्मात्र भी इच्छा है, तबतक अन्तःकरण शुद्ध नहीं हुआ है।**

××× ××× ××× ×××

असत्यके समान कोई पाप नहीं है। मनुष्य केवल अपने कर्तव्यका पालन करे तो अन्य कोई साधन किये बिना कल्याण हो जायगा। निषेधात्मक साधन श्रेष्ठ है। असुरों, राक्षसोंमें भी विध्यात्मक साधन था, पर निषेधात्मक साधन नहीं था। निषेधका त्याग करनेपर विध्यात्मक साधन अपने-आप होता है। सत्यभाषणकी अपेक्षा असत्यका त्याग श्रेष्ठ है। संसारका निषेध करें तो परमात्मतत्त्व ज्यों-का-त्यों है। संसारसे अलग होनेपर संसारके दोष दीखने लगेंगे। परमात्मासे अभिन्न होनेपर परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी।

××× ××× ××× ×××

गीताकी आज्ञा है—**'न किञ्चिदपि चिन्तयेत्'** (६।२५)

'कुछ भी चिन्तन न करे'। अतः संकल्प-विकल्पके साथ सम्बन्ध मत रखो, उनकी उपेक्षा करो।

मेरी ऐसी धुन है, ऐसी खोजकी प्रवृत्ति है कि जल्दी-से-जल्दी, सुगमतापूर्वक सबको कैसे भगवत्प्राप्ति हो जाय! पारमार्थिक मार्गमें भगवान्, सन्त-महात्मा, शास्त्र आदि सबकी सहायता प्राप्त होती है। इस मार्गमें घाटा या नुकसान होता ही नहीं। भगवान्ने समय, समझ, सामग्री और सामर्थ्य बहुत ज्यादा दी है, जिसके थोड़े-से उपयोगसे तत्त्वप्राप्ति हो सकती है।

××× ××× ××× ×××

एक देखनेवाला है, एक दीखनेवाला है। दीखनेवाला तो दीखता है, पर देखनेवाला नहीं दीखता। **देखनेवाला 'अहम्' है, शेष सब दीखनेवाला है।** अहम्ने ही संसारको धारण कर रखा है। हमारा वास्तविक स्वरूप अहम् नहीं है। अहम्का भी भान होता है। तत्त्व ज्यों-का-त्यों है, उसमें द्रष्टापना नहीं है। वही हमारा स्वरूप है।

'नासतो विद्यते भावः'—यह दीखनेवाला है और **'नाभावो विद्यते सतः'**—यह देखनेवाला है।

××× ××× ××× ×××

सांसारिक किसी कार्यमें स्वतन्त्रता नहीं है और परमात्माकी प्राप्तिमें परतन्त्रता नहीं है। किसीके सहारेकी जरूरत नहीं है, केवल परमात्माके सहारेकी जरूरत है। सन्त, धर्म, शास्त्र आदि सभी हमसे सहमत हैं, हमारी मददके लिये तैयार हैं। परमात्माकी प्राप्ति हम अकेले कर सकते हैं। परन्तु सांसारिक (व्यापार आदि) कार्य हम अकेले नहीं कर सकते। 'हे नाथ! मैं आपका हूँ'—इसमें किसकी जरूरत है?

हमें न जीनेसे मतलब है, न मरनेसे मतलब है। भगवान्‌को गरज होगी तो जीता रखेंगे—

गिरह गाँठ नहिं बाँधते, जब देवे तब खाहिं।
गोबिंद तिनके पाछे फिरें, मत भूखे रह जाहिं॥

हम भगवान्‌का चिन्तन करते हैं तो भगवान् हमारा चिन्तन करते हैं, इसमें बीचमें बाधा देनेवाला कौन है? भगवान्‌ने कहा है—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।'** (गीता ४। ११)। **भगवान्‌को भक्तोंकी रक्षा, सहायता, पालन करनेमें बहुत आनन्द आता है।** वे स्मरण करनेमात्रसे प्रसन्न हो जाते हैं—**'अच्युतः स्मृतिमात्रेण'**। इसमें खर्चा क्या है?

ईश्वर 'स्व' है, 'पर' नहीं। अतः उसकी परतन्त्रता नहीं होती। भक्ति स्वतन्त्र साधन है—***'भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥'***(मानस, उत्तर० ४५। ३)। सत्संग भी भगवान् देते हैं—***'जब द्रवै दीनदयालु राघव, साधु-संगति पाइये।'*** (विनय० १३६। १०)।

××× ××× ××× ×××

सत्संगसे शान्ति मिलती है, तभी इतने लोग इकट्ठे होते हैं। सत्संगमें बहुत गहरी बातें मिलती हैं। यह नाटक, सिनेमाकी तरह नहीं है।

'वासुदेवः सर्वम्' सीखनेकी चीज नहीं है, प्रत्युत अनुभवकी चीज है।

'मैं हूँ'—इसमें 'मैं' असत्य है और 'हूँ' सत्य है। 'मैं'-पनका तो सुषुप्तिमें अभाव होता है, पर अपनी सत्ताका अभाव नहीं होता—यह सबके अनुभवकी बात है। जो हरदम रहती है,

वह सत्ता ही हमारा स्वरूप है। जाग्रत्, स्वप्न आदि अवस्थाओंके भाव और अभावका अनुभव करनेवाला तो एक ही है।

××× ××× ××× ×××

परमात्मामें कोई विषमता है ही नहीं—***'सब पर मोहि बराबरि दाया'*** (मानस, उत्तर० ८७।४)। वे समान रूपसे सर्वत्र व्यापक हैं। माँकी तरह वे सबके लिये पूरे-के-पूरे हैं। भगवान् मेरे हैं—इस बातसे बड़ा आनन्द आना चाहिये। संसारको अपना मान लिया तो यह अपनापन टिकेगा नहीं। प्रभुको अपना मानकर पुकारो। भगवान् तो सदासे ही हमारे हैं, पर इधर खयाल नहीं है।

जैसे भगवान्के लिये भक्त लालायित रहते हैं, ऐसे ही भक्तके लिये भगवान् लालायित रहते हैं—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (गीता ४।११)।

मीराबाईने कहा है—***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'।*** वास्तवमें दूसरा कोई है ही नहीं!

××× ××× ××× ×××

जिसे भगवान्के होनेका विश्वास हो जाय, वह निर्भय और निश्चिन्त हो जाता है। **भगवान् हैं, वे मिलते हैं और मेरेको भी मिल सकते हैं।** ऐसे ही तत्त्वज्ञान भी हमारेको हो सकता है। कारण कि भगवान् और बोध स्वतःसिद्ध हैं।

नित्यप्राप्तको प्राप्त करना है और नित्यनिवृत्तकी निवृत्ति करनी है—यह बात साधकके लिये बड़े कामकी है।

××× ××× ××× ×××

मनुष्य किसी-न-किसीका सहारा लेता है, यह उसका स्वभाव है, आदत है। इससे सिद्ध होता है कि सहारा लेना

आवश्यक है और सहारा लेनेयोग्य कोई है। परन्तु यह नाशवान्‌का सहारा लेता है, तभी दुःख पा रहा है। उसको इसका पता नहीं है कि किसका सहारा लेना है।

संसारका सम्बन्ध केवल कामनासे है। कामना न हो तो संसारका सम्बन्ध है ही नहीं।

मन लगानेवाला योगभ्रष्ट होता है—'**योगाच्चलितमानसः**' (गीता ६। ३७)। स्वयं योगभ्रष्ट होता ही नहीं।

××× ××× ××× ×××

परमात्मतत्त्वमें क्रिया और पदार्थ—दोनों ही नहीं हैं। 'करना' भी क्रिया है और 'न करना' भी क्रिया है। करना और न करना, पदार्थ और पदार्थका अभाव—दोनोंसे हमारा कोई मतलब न हो। परमात्माका भी चिन्तन न हो—'**न किञ्चिदपि चिन्तयेत्**' (गीता ६। २५)। गंगाजी हैं—इसका चिन्तन क्या करना? चिन्तन-रहित होनेका सुख भी नहीं लेना है। न करना है, न पाना है। **कुछ कर लें, कुछ मिल जाय—दोनोंसे उपराम होना है।**

××× ××× ××× ×××

यह सभी सन्तोंका अनुभव है कि सब कुछ भगवान् ही हैं। सब कुछ तू-ही-तू है। इसका ज्ञान कैसे हो? किसीको बुरा न समझें, किसीकी बुराई न करें और किसीका भी बुरा न चाहें।

कहीं बुराई दीखे तो समझें कि भगवान् कलियुगकी लीला कर रहे हैं। जैसा स्वरूप, वैसी लीला। बर्ताव सावधानीसे करें; क्योंकि भगवान्‌की आज्ञा है—'**कर्मण्येवाधिकारस्ते**' (गीता २। ४७)। परन्तु भीतरसे किसीको बुरा न समझें। जैसे

स्नानके समय साबुन लगाये चेहरेको दर्पणमें देखते हैं तो भद्दा रूप दिखायी पड़ता है, पर मनमें अपना रूप वैसा नहीं समझते। ऐसे ही सबके भीतर साक्षात् परमात्मा हैं, पर ऊपरसे अनेक तरहके वेष हैं। तात्पर्य है कि **बाहरसे सावधानी रखो, पर भीतरसे बुरा न समझो।**

किसीकी बुराई न करें। **व्यवहार यथायोग्य करते हुए भी भीतरसे सबको भगवान् ही समझें।** भीष्मजी कृष्णको भगवान्-रूपसे जानते थे, पर युद्धके समय वे उनकी पूजा अपने बाणोंसे करते हैं! जैसा रूप, वैसी पूजा।

××× ××× ××× ×××

मनुष्यके भीतर किसीका सहारा (आश्रय) लेनेकी प्रवृत्ति भी होती है और स्वतन्त्र रहनेकी प्रवृत्ति भी होती है। सहारा लेनेकी प्रवृत्तिवालोंके लिये शरणागति सर्वश्रेष्ठ है। कारण कि जीव जिसका अंश है, उसीका आश्रय लेनेसे काम बनेगा। शरणागतिमें परतन्त्रता नहीं है, प्रत्युत महान् स्वतन्त्रता है।

ऊपरसे भरे हुए साधनसे लाभ नहीं होता। वास्तवमें हम क्या चाहते हैं—यह जानना चाहिये। इसको जाननेवाले बहुत कम हैं।

मैं, तू, यह तथा वह—सबमें एक परमात्मतत्त्व परिपूर्ण है। **एक परमात्माके सिवाय कुछ हुआ नहीं, है नहीं, होगा नहीं, हो सकता नहीं।**

××× ××× ××× ×××

शरीरको संसारसे अलग मानना गलती है। अपनेको सांसारिक वस्तुओंका मालिक मानते हैं, पर हो जाते हैं गुलाम। वस्तुओंको संसारकी सेवामें लगाना ईमानदारी है। अपने लिये

जप, तप आदि करनेवालेका नाम हिरण्याक्षकी सूचीमें लिखा जायगा! कर्म संसारके लिये होगा और योग परमात्माके साथ होगा। कर्मयोग भी करणनिरपेक्ष साधन है।

संसारकी सब वस्तुएँ मिली हुई हैं और बिछुड़नेवाली हैं। उनको अपना और अपने लिये मानना बेईमानी है। बेईमानीको छोड़नेका नाम 'मुक्ति' है।

संसारके लिये उपयोगी होना 'कर्मयोग', अपने लिये उपयोगी होना 'ज्ञानयोग' और भगवान्‌के लिये उपयोगी होना 'भक्तियोग' है।

××× ××× ××× ×××

गीताने **'वासुदेवः सर्वम्'** को अधिक महत्त्व दिया है। मनुष्यजन्म ही बहुत जन्मोंका अन्तिम जन्म है— **'बहूनां जन्मनामन्ते'** (गीता ७।१९)। अब मनुष्य यहाँसे जहाँ जाना चाहे, वहाँ जा सकता है— ***'नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी'*** (मानस, उत्तर० १२१।५)। मनुष्यजन्मके बादके जन्मका निर्णय भगवान् नहीं करते। मनुष्य यहाँसे मुक्त भी हो सकता है, भक्त भी हो सकता है और चौरासी लाख योनियोंमें भी जा सकता है।

भगवान्‌ने मनुष्यजन्म दिया है तो साधन-सामग्री भी साथमें दी है। प्रत्येक परिस्थिति साधन-सामग्री है। परंतु मनुष्य इस साधन-सामग्रीको भोग-सामग्री बना लेता है। **प्रतिकूल परिस्थिति एक नंबरकी साधन-सामग्री है; क्योंकि इसमें पापोंका नाश होता है और सावधानी आती है।**

सुखकी इच्छाका नाम दुःख है। संसारमें सुख भी दुःख है और दुःख भी दुःख है—**'दुःखमेव सर्वं विवेकिनः'** (योगदर्शन २।१५)। आज केवल सुखकी तरफ ही दृष्टि है।

यह दृष्टि महान् दुःख देनेवाली है। **जहाँ सुख मिले, वहाँ समझे कि खतरा है!**

अनुकूलता-प्रतिकूलतामें सुखी-दुःखी होना पाप है, तभी भगवान्‌ने कहा है—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

(गीता २।३८)

'जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःखको समान करके फिर युद्धमें लग जा। इस प्रकार (युद्ध करनेसे) तू पापको प्राप्त नहीं होगा।'

××× ××× ××× ×××

आमके वृक्षमें हर जगह रस रहता है, पर उसके फलमें जो रस है, वह कहीं नहीं है। ऐसे ही परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण हैं, पर उनके रूपमें (साकारमें) जो मिठास है, वह कहीं नहीं है। तभी कहा है—'**पिबत भागवतं रसमालयम्**' (श्रीमद्भा० १।१।३)। फलका ज्ञान जितना तोतेको है, उतना अन्यको नहीं। तोता उसी फलमें चोंच लगाता है, जो मीठा होता है। भागवत शुकके मुखसे निकली है। इसमें न छिलका है, न गुठली है।

मुक्तिमें मनुष्य सांसारिक दुःखोंसे छूटता है। परंतु भक्तिमें विलक्षण रस है, जिससे कभी अरुचि होती ही नहीं। सांसारिक सुखसे अरुचि होती ही है—यह नियम है।

भगवान् आत्मारामगणाकर्षी हैं, वे मुक्त पुरुषोंको भी खींच लेते हैं। निर्गुण-निराकारके उपासक श्रीमधुसूदनाचार्यजी कहते हैं—

अद्वैतवीथीपथिकैरुपास्याः स्वाराज्यसिंहासनलब्धदीक्षाः।
शठेन केनापि वयं हठेन दासीकृता गोपवधूविटेन॥

'अद्वैत-मार्गके अनुयायियोंद्वारा पूज्य तथा स्वाराज्यरूपी सिंहासनपर प्रतिष्ठित होनेका अधिकार प्राप्त किये हुए हमें गोपियोंके पीछे-पीछे फिरनेवाले किसी धूर्तने हठपूर्वक अपने चरणोंका गुलाम बना लिया!'

प्रेमीकी बात प्रेमी ही समझता है, ज्ञानी नहीं। पागलकी भाषाको कौन समझे? गूँगेकी भाषाको कौन समझे?

××× ××× ××× ×××

'करना' उत्पत्ति-विनाशशील वस्तुके लिये होता है। अनुत्पन्न परमात्मतत्त्वके लिये 'भाव' और 'विवेक' होता है। जैसे हम मकानसे अलग हैं, तभी हम मकानसे बाहर जाते हैं, ऐसे ही हम शरीरमें रहते हुए भी शरीरसे अलग हैं। शरीर भी हमारा नहीं है। यदि हमारा है तो फिर इसे बीमार क्यों होने देते हो? मरने क्यों देते हो? हम परमात्माके हैं, परमात्मा हमारे हैं। शरीर और संसार एक हैं। हम शरीरसे अलग हैं तो संसारमात्रसे अलग हैं।

हम संसारसे अलग होकर ही संसारको जान सकते हैं; क्योंकि हम संसारसे अलग हैं। परमात्मासे एक होकर ही परमात्माको जान सकते हैं; क्योंकि परमात्मासे एक हैं।

आजकल बुद्धिसे ही संसारको समझते हैं और बुद्धिसे ही ब्रह्मको समझते हैं। बुद्धि तो अपने कारण प्रकृतिको भी नहीं जान सकती। नमककी डली मुखमें रखकर कोई मिश्रीके स्वादको नहीं जान सकता। सबका प्रकाशक हमारा स्वरूप है। प्रकाश्य हमारा स्वरूप नहीं है। हमारा स्वरूप सूर्यकी तरह प्रकाशक भी है और प्रकाशस्वरूप भी है।

××× ××× ××× ×××

शास्त्रको जाननेवाले तो कई मिलेंगे, पर तत्त्वका अनुभव करनेवाले नहीं मिलेंगे। लगनवाले आदमी बहुत कम मिलते हैं। तभी भगवान्‌ने कहा है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

(गीता ७।३)

'हजारों मनुष्योंमें कोई एक सिद्धि (कल्याण)-के लिये यत्न करता है और उन यत्न करनेवाले सिद्धों (मुक्त पुरुषों)-में कोई एक ही मुझे यथार्थ रूपसे जानता है।'

स्वयंकी लगन होनेसे तो परमात्माके यथार्थ रूपको जान सकते हैं—'**यततामपि**', पर लगनके बिना केवल सुननेसे नहीं जान सकते—'**श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्**' (गीता २।२९)। सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) श्रद्धाकी कमी मानते थे, मैं लगनकी कमी मानता हूँ। अभी जो वेदान्तका प्रचार हो रहा है, इसे मैं बाधक मानता हूँ। वेदान्तके ग्रन्थ पढ़ोगे तो उलझन हो जायगी, पर सन्तोंकी वाणी पढ़ोगे तो कल्याण हो जायगा।

सच्ची जिज्ञासा हो तो सन्त-महात्मा अपने-आप खिंचे चले आते हैं। माँको बच्चेकी जितनी आवश्यकता है, उतनी बच्चेको माँकी नहीं है। बछड़ा एक मुँहसे दूध पीता है, पर गायके चार थन होते हैं!

××× ××× ××× ×××

परमात्माका अंश होनेसे जीवमात्रका स्वभाव आश्रय लेनेका है। परंतु शरीरको अपना स्वरूप मान लेनेके कारण वह शरीरकी ही जातिका आश्रय चाहता है। शरीर मैं नहीं, मेरा नहीं और मेरे

लिये नहीं—यह हो जाय तो फिर वह नाशवान्‌का आश्रय नहीं चाहेगा। नाशवान्‌का आश्रय लोगे तो तरह-तरहकी आफतें आयेंगी।

××× ××× ××× ×××

जैसे अंकुर निकले बिना बीजका पता नहीं लगता, ऐसे ही वासना बीजरूपसे रहती है, उसका पता नहीं लगता। वासनासे कामना, आशा, तृष्णा आदि उत्पन्न होते हैं। **शुद्ध वासना भी तत्त्वबोधमें बाधक होती है।**

'मैं हूँ'—यह जड़-चेतनकी ग्रन्थि है। इसलिये संसारके भोग व संग्रहकी इच्छा भी होती है और परमात्मप्राप्तिकी इच्छा भी होती है। वासना अहम्‌के भीतर जड़-अंशमें रहती है। अहम् मिटनेपर वासनाका नाश हो जाता है।

××× ××× ××× ×××

संसारमें स्थायी रहनेकी प्रवृत्ति बहुत बाधक है। सत्संगसे बहुत लाभ, सुधार होता है, पर पूर्णता प्राप्त किये बिना उसमें सन्तोष नहीं करना चाहिये।

अभी जो परिस्थिति मिली है, उसीके सदुपयोगसे परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी।

भगवान्‌के समान अपना कोई नहीं है—

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं।

(मानस, किष्किंधा० १२।१)

'अच्युतः स्मृतिमात्रेण'—भगवान्‌को याद करना ही उनकी सेवा करना है। **केवल याद करना है, पत्र-पुष्प-फलकी भी जरूरत नहीं!** द्रौपदीने केवल याद किया था।

इधर दशरथजी प्रेमी थे, कौसल्याजी ज्ञानी थीं। उधर जनकजी ज्ञानी थे, सुनयनाजी प्रेमी थीं।

विदुरानीजीको यह पता नहीं कि मैं गिरी खिला रही हूँ या छिलका, ऐसे ही ठाकुरजीको पता नहीं कि मैं गिरी खा रहा हूँ या छिलका—'**ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।**' (गीता ४।११)।

× × ×   × × ×   × × ×   × × ×

हमें राग-द्वेषसे रहित होना है। अनुकूलतासे सुख हो तो इसका भी दुःख होना चाहिये, प्रतिकूलतासे दुःख हो तो इसका भी दुःख होना चाहिये। यह साधकमें सावधानी होनी चाहिये। न प्रवृत्तिकी इच्छा हो, न निवृत्तिकी इच्छा हो।

जबतक असर पड़ता है, तबतक साधक 'स्वस्थ' नहीं है, रोगी है।

× × ×   × × ×   × × ×   × × ×

सबमें परमात्मा परिपूर्ण है—इस बातको याद रखो और प्राणिमात्रमें भगवान्‌को देखो। कम-से-कम मनुष्योंमें तो भगवान्‌को देखो। जैसे मन्दिरमें भगवान्‌का पूजन मूर्त्तिमें करते हैं, ऐसे ही मनसे सबमें भगवान्‌को देखकर उनका पूजन करो। **मन-ही-मन सबको दण्डवत् प्रणाम करो कि उनको पता ही न लगे।** गुप्त दान, गुप्त साधन बड़ा तेज होता है। सबको किया गया प्रणाम भगवान्‌को प्राप्त होता है। यह बहुत ही उत्तम साधन है जो हरेक कर सकता है।

पशु, पक्षी आदिसे कभी खटपट, लड़ाई नहीं होती। मनुष्योंसे ही लड़ाई होती है। इसलिये मनुष्योंमें भगवद्भाव करनेके लिये कहा है। कम-से-कम प्रत्येक मनुष्यको नमस्कार करो। **नमस्कार किये बिना कोई मनुष्य खाली न जाय।**

सबको किया गया नमस्कार भगवान्‌को प्राप्त होता है। यह बहुत ही उत्तम साधन है जो हरेक कर सकता है।

××× ××× ××× ×××

मुक्ति 'कर्म' से नहीं होती, प्रत्युत 'योग' (कर्मयोग)-से होती है। अपने लिये कुछ भी न करना 'कर्मयोग' है। समाधि भी अपने लिये न हो।

जो साधन कर सकते हैं, उसे करते नहीं और जो नहीं कर सकते, उसके लिये हिचकते हैं—यह बाधक है। **जो सुगमतासे कर सकते हैं, उसे करें तो आखिरतक पहुँच जायँगे।**

भक्तिमें अहंकारको बदला जाता है। अहंकार बदलना बहुत सुगम है। मैं साधक हूँ; अतः मुझे साधनसे विरुद्ध कार्य नहीं करना है—इतनी सावधानी रखो।

लड़का कहना न माने तो उसे अपना मत मानो। **उससे अपनापन छोड़ दोगे तो उसका सुधार हो जायगा—यह मार्मिक बात है।** मन मेरा है, तो फिर मन कभी शुद्ध नहीं होगा। अपनापन हटाते नहीं और शुद्ध कर सकते नहीं—यह गुत्थी है। मनको मेरा मत मानो तो वह शुद्ध हो जायगा। वास्तवमें वह भगवान्‌का है, आप अपना मानते हैं—यह गलती है। **मन एकाग्र हो या न हो, उसे छोड़ दो तो यह गीताका 'योग' है।**

जो साधन नहीं कर सकते, उसका लोभ मत करो। जो कर सकते हैं, वह करो। भगवान्‌की कृपासे जो काम होगा, वह आपके उद्योगसे नहीं होगा। इसलिये भगवान्‌को पुकारो। **पुकारसे जो काम होता है, वह विवेकसे नहीं होता।** पुकारसे बहुत जल्दी सिद्धि होती है।

विवाह होनेपर आपकी लड़की अपना अहंकार बदल लेती है, फिर आप नहीं बदल सकते? आप मीराबाई बन जाओ—*'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'।*

जिस साधनमें आपकी योग्यता, विश्वास और तत्परता हो, वही साधन करो। **साधन अनेक हैं, उनमें समन्वय मत करो। समन्वय करना साधकका काम नहीं है।**

किसी ग्रन्थके खण्डन-अंशको मत मानो, मण्डन-अंशको मानो। गीता, रामायण और भागवतमें मेरी श्रद्धा है, अन्य ग्रन्थोंमें वैसी श्रद्धा नहीं है। पण्डिताईके ग्रन्थोंसे पण्डिताई आ जायगी, पर सिद्धि नहीं होगी।

××× ××× ××× ×××

परमात्मप्राप्ति सुगम है—यही मानना साधकके कामका है। लाभकी बातको ग्रहण करना है। वास्तवमें परमात्मप्राप्ति कठिन नहीं है, प्रत्युत संसारका त्याग कठिन है। लगनकी कमी होनेसे परमात्मप्राप्ति कठिन दीखती है। कठिन वह वस्तु होती है, जिसका निर्माण होता है। परमात्माका निर्माण नहीं होता, वे नित्यप्राप्त हैं। पारसके स्पर्शसे लोहेका सोना बनता है, पर परमात्मा बनते नहीं हैं। केवल उत्कण्ठाकी कमी है। **परमात्मप्राप्तिमें देरी असह्य हो तो फिर देरी नहीं होती।**

देहाभिमान और राग—ये दो बड़ी भयंकर बीमारी हैं। पढ़ाई करनेवाले ब्रह्म, प्रकृति और जीव सबको बुद्धिका विषय बनाते हैं। साधनको न देखकर साध्यको देखते हैं।

आप रुपयोंको चाहते हैं, रुपये आपको नहीं चाहते, फिर भी आप रुपये कमा लेते हैं। परन्तु परमात्मा तो आपको चाहते हैं, फिर उनकी प्राप्तिमें क्या कठिनता? रुपयोंकी प्राप्तिमें तो

प्रारब्ध है, पर परमात्माकी प्राप्तिमें प्रारब्ध है ही नहीं। परमात्माकी प्राप्तिमें केवल भाव और बोधकी मुख्यता है। उत्कट अभिलाषा हो तो पापी-से-पापीको भी परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है और अभिलाषा न हो तो बड़े-बड़े पुण्यात्माको भी प्राप्ति नहीं हो सकती। परमात्मप्राप्ति पाप-पुण्य दोनोंसे ऊँचा उठनेपर होती है।

××× ××× ××× ×××

भगवान्‌के मिलनका रस बड़ा रसीला होता है। वैसा रस और कहीं नहीं है। वह अनिर्वचनीय है। मिलनमें जो रस है, विरहमें उससे कम रस नहीं है। योगमें वियोग है और वियोगमें योग है। 'योग' में तृप्ति नहीं होती और 'वियोग' में विस्मृति नहीं होती! यह अनिर्वचनीय स्थिति प्रेममें ही होती है, ज्ञानमें नहीं। ज्ञानमें अखण्ड आनन्द रहता है, पर प्रेममें अखण्ड आनन्द रहते हुए भी प्रतिक्षण वर्धमान आनन्द है— **'दिने दिने नवं नवम्'**। प्यास जल-तत्त्वसे अलग नहीं है, पर प्यासमें जो आनन्द है, वह जलमें नहीं है। लौकिक (जलकी) प्यासमें तो दुःख होता है, पर भगवान्‌की प्यासमें विलक्षण आनन्द है। इसे प्रेमी भक्त ही जानते हैं, ज्ञानी नहीं जान सकते। सांसारिक वस्तु मिलनेपर अभिमान आता है, पर भगवान्‌से मिलन होनेपर अभिमान आता ही नहीं। हनुमान्‌जी कहते हैं— ***'जानउँ नहिं कछु भजन उपाई'*** (मानस, किष्किंधा० ३। २)।

परमात्मासे वियोगका दुःख सैकड़ों-हजारों सांसारिक सुखोंसे बढ़कर है। वह नित्यवियोग है। प्रेममें मुक्तिका रस भी फीका हो जाता है। मुक्तिमें तो संसार छूटता है, दुःख मिटता है, आफत छूटती है।

××× ××× ××× ×××

सहजावस्था स्वाभाविक है। जन्म-मरण, राग-द्वेष, दुःख-संताप आदि सब अस्वाभाविक हैं। जन्म-मरणका कारण गुणोंका संग है—'**कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु**' (गीता १३। २१)। परन्तु वास्तवमें स्वयं असंग है—'**असङ्गो ह्ययं पुरुषः**' (बृहदा० ४। ३। १५)।

अभ्यास या क्रिया जड़के द्वारा होती है। तत्त्वकी प्राप्ति जड़के द्वारा नहीं होती, प्रत्युत जड़के त्यागसे होती है।

××× ××× ××× ×××

शरणागति करणनिरपेक्ष है। यह स्वयंकी स्वीकृति है, बुद्धिका निश्चय नहीं है। 'मैं हूँ'—यह क्या बुद्धिका निश्चय है? गीतामें '**मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः**' (१२। १४) पदोंमें मन-बुद्धि जिसके हैं, वह स्वयं अर्पित है। मुख्यता स्वयंकी है, मन-बुद्धिकी नहीं। मन-बुद्धिकी अपेक्षा नहीं है, इसलिये मैं 'करणरहित' नहीं कहता हूँ, प्रत्युत 'करणनिरपेक्ष' कहता हूँ। स्वयंमें बैठी बातकी विस्मृति नहीं होती। स्वीकृति-अस्वीकृति शब्द मुझे बहुत विलक्षण दीखते हैं।

'मैं भगवान्‌का हूँ'—ऐसा माननेके बाद यदि अपनेमें कोई विकार दीखे तो भगवान्‌को पुकारो! ***'जायगी लाज तिहारी नाथ मेरो का बिगड़ैगो'!***

××× ××× ××× ×××

नित्यप्राप्तकी प्राप्ति और नित्यनिवृत्तकी निवृत्ति करना है। परमात्मप्राप्ति सहज है, स्वाभाविक है। संसार निरन्तर बदलता है, पर उसमें रहनेवाला नहीं बदलता। तत्त्व कृतिसाध्य नहीं है। मान्यता तो संसारकी है, तत्त्वकी मान्यता नहीं है। तत्त्व

स्वत:सिद्ध और सहज है—इतनी बात पहले स्वीकार कर लो, फिर उसकी प्राप्ति सुगम हो जायगी।

××× ××× ××× ×××

शराब पीना महापाप है। **अपने-आप मरी हुई गायके माँससे भी शराब अधिक खराब है।** शराबके बननेमें लाखों-करोड़ों जीवोंकी हत्या होती है। शराब पीनेसे लगनेवाला पाप और तरहका है! यह आस्तिकता, पुण्य, धर्मके बीजको ही नष्ट कर देता है। इसको पीनेसे आस्तिकताके अंकुर, धार्मिक भाव भूने जाते हैं।

बन्धन क्रियासे नहीं होता, प्रत्युत कामनासे होता है। अत: भगवान् कहते हैं—'**योगस्थ: कुरु कर्माणि**' (गीता २। ४८)। योग नाम समताका है। समताके बिना योग नहीं होता, केवल कर्म होते हैं। **कोई भी साधन करो, अन्तमें योग आना चाहिये;** जैसे—कोई सवाल करो तो अन्तमें टोटल सही आना चाहिये, नहीं तो सब गलत! अन्त:करणमें समता आ गयी तो आपकी स्थिति ब्रह्ममें हो गयी—'**निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिता:**' (गीता ५। १९)।

परमात्मा 'है'। परन्तु देखनेमें 'नहीं' आता है; क्योंकि जिससे देखते हैं, वह 'नहीं' की जातिका है। 'नहीं' को 'है' माननेसे 'है' छिप जाता है।

××× ××× ××× ×××

अपना आचरण, भाव ठीक रखो, लोग चाहे जो कहें। कपड़ा लोक-सुहावता (लोक-मर्यादाके अनुसार) पहनो और रोटी शरीर-सुहावती खाओ। अपने आचरण, भावकी तरफ देखकर सन्तोष करो, लोगोंकी तरफ मत देखो। अपना आचरण

बेठीक हो तो सुधार कर लो। मेरे दादागुरु कहा करते थे कि स्त्रियोंको सब कपड़े नये नहीं पहनने चाहिये, एक-दो पुराने कपड़े भी रखने चाहिये।

अपने भजनमें लगे रहो। संसारमें क्या हो रहा है और क्या होगा—इसकी चिन्ता मत करो—*'होइहि सोइ जो राम रचि राखा'* (मानस, बाल० ५२।४)। भजनमें लग जाओ, निर्वाहकी चिन्ता मत करो। आज भजनमें लग जाओ और कल मृत्यु हो जाय तो आपका उम्रभर भजन हो गया।

पुरानी बात कही जाय तो समझे कि कुछ-न-कुछ घाटा पड़ गया है!

जैसे वैद्य जो दवा दे, वही बढ़िया है, ऐसे ही भगवान् जो विधान करें, वही बढ़िया है।

××× ××× ××× ×××

वस्तु, व्यक्ति, काल आदि सब उस परमात्माके अन्तर्गत हैं। परमात्मा इन सबसे अतीत भी है और इन सबमें परिपूर्ण भी है। जड़तासे ऊँचा उठाना विवेकशक्तिका खास काम है। विवेकको महत्व देना हमारा काम है। **जो अपने विवेकका आदर नहीं करेगा वह गुरु, शास्त्र, वेद आदिका भी आदर नहीं करेगा।** वह सीख तो लेगा, पर तत्त्वकी प्राप्ति नहीं कर सकेगा।

××× ××× ××× ×××

मनुष्यजन्मका अवसर मिलना बड़ा दुर्लभ है। जो इसका दुरुपयोग करता है, उसे फिर यह मौका नहीं मिलेगा। शास्त्रमें आया है—

अमन्त्रमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्यः पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः॥

'ऐसा कोई अक्षर नहीं है जो मन्त्र न हो। ऐसी कोई वनस्पति नहीं है जो औषधि न हो। ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो योग्य न हो। परन्तु इनका संयोजक दुर्लभ है।'

परमात्मप्राप्तिमें देरीका कारण लगनकी कमी है। जैसे फल तैयार होता है तो उसके पास तोता स्वयं आता है, ऐसे ही आप तैयार हो जायँगे तो सन्त-महात्मा स्वतः आयेंगे।

××× ××× ××× ×××

हमने शरीरको प्रधानता देकर 'मैं हूँ' माना है, चेतनको प्रधानता देकर नहीं। हमें चेतन ('है')-को प्रधानता देनी है। ज्ञान उत्पन्न नहीं होता; क्योंकि ज्ञानका कभी अभाव नहीं होता। **'है' का अनुभव है, करना नहीं पड़ता।**

××× ××× ××× ×××

भगवान्‌की जगह संसारको मान लिया—इस गलतीको मिटाना है। यह असली बात है! संसार नहीं है और परमात्मा है। जो प्रत्येक क्षणमें बदलता है, वह सच्चा कहाँ है? **वृत्ति लगाने या हटानेसे तत्त्व कैसे मिलेगा? तत्त्व तो वृत्तियोंसे अतीत है।** कोई भी वृत्ति कभी स्थिर नहीं रहती। सबके अभावका अनुभव होता है, पर अपने अभावका अनुभव कभी किसीको नहीं होता।

सनकादिकोंने कहा कि मन संसारमें बस गया और संसार मनमें बस गया तो भगवान्‌ने कहा—**'मद्रूप उभयं त्यजेत्'** (श्रीमद्भा० ११। १३। २६) 'मेरे स्वरूपमें स्थित होकर दोनोंको छोड़ दो।' मनको अपना मानना ही दोष है। मन सबका एक है, फिर कुत्तेके मनकी चिन्ता क्यों नहीं होती? अतः 'स्व' में स्थित होकर चुप हो जाओ—**'आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्'** (गीता ६। २५)।

कैसी परिस्थिति आये, 'स्व'में क्या फर्क पड़ता है? गंगाजीका जल कैसा ही आये, शिलामें क्या फर्क पड़ता है? **जबतक जड़का असर पड़ता है, तबतक हमारी स्थिति जड़में है।** जड़को हटानेकी चेष्टा करोगे तो उसकी सत्ता दृढ़ होगी। अतः उसकी उपेक्षा करो— '**शनैः शनैरुपरमेत्**' (गीता ६। २५)।

××× ××× ××× ×××

पिता ही पुत्ररूपसे पैदा होता है। इसी तरह भगवान् ही संसाररूपसे प्रकट हुए हैं। जैसे ब्राह्मणका लड़का ब्राह्मण ही होता है, ऐसे ही भगवान्‌से उत्पन्न होनेवाले सब भगवान्‌के ही रूप हुए। **भगवान्‌का सबसे बढ़िया रूप कौन-सा है? सबसे बढ़िया रूप है—संसार।** सब कुछ भगवान्‌का स्वरूप है। इतनी बात मान लो तो आपकी यहाँकी यात्रा सफल हो गयी! इसके लिये श्रवण, मनन आदि कुछ नहीं करना है। भगवान् सुलभ हैं, पर महात्मा दुर्लभ हैं! सबमें भगवान्‌को देखो, फिर भगवान् छिप नहीं सकते। यह बात भी भगवान्‌की कृपासे मिलती है! क्योंकि न तो आपके मनमें थी, न मेरे मनमें थी। भगवान्‌के मनमें देनेकी है! यह खास भगवान्‌के हृदयकी बात है।

गीता भगवान्‌के द्वारा खुशीमें, राजी होकर गाया हुआ गीत है। उपनिषद् साथमें होनेसे 'भगवद्गीता' हो गया, अन्यथा यह 'भगवद्गीतम्' है।

××× ××× ××× ×××

वास्तवमें संसार नहीं है, परमात्मा है। केवल इधर खयाल करना है। संसार तो प्रतिक्षण बदल रहा है, वह है कहाँ! जो विद्यमान होता है, वह कभी बदलता नहीं। संसार अभीतक

किसीको प्राप्त नहीं हुआ। प्राप्त हो सकता ही नहीं। हमने गलती यह की कि जो अप्राप्त है, उसको प्राप्त मान लिया और जो प्राप्त है, उसको अप्राप्त मान लिया। **परमात्माको अप्राप्त मान लिया, इसलिये उसे प्राप्त करना पड़ता है और संसारको प्राप्त मान लिया, इसलिये उसे हटाना पड़ता है।**

××× ××× ××× ×××

उधर दृष्टि न होनेसे भगवान् अप्राप्त मालूम देते हैं। वास्तवमें जहाँ दृष्टि जाय, वहीं भगवान् हैं। अर्जुन कहता है—

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः॥

(गीता ११।४०)

'हे सर्वस्वरूप! आपको आगेसे भी नमस्कार हो और पीछेसे भी नमस्कार हो! आपको सब ओरसे (दसों दिशाओंसे) ही नमस्कार हो। हे अनन्तवीर्य! असीम पराक्रमवाले आपने सबको एक देशमें समेट रखा है; अतः सब कुछ आप ही हैं।'

जैसे कोई समुद्रमें डूब जाय तो चारों तरफ जल-ही-जल है। आकाशमें चला जाय तो चारों तरफ आकाश-ही-आकाश है। ऐसे ही चारों तरफ परमात्मा-ही-परमात्मा हैं। उनके सिवाय और कुछ है ही नहीं। वे दूर नहीं हैं। हमने ही उनको दूर मान लिया, उनको अपने पास नहीं माना।

अपने इष्टकी हर चीज (नाम, रूप, लीला आदि) अच्छी लगती है। सब जगह हमारा इष्टदेव ही है, फिर कितना आनन्द है! जीते भी आनन्द, मरनेमें भी आनन्द! संसारमें अपनापन छोड़ दो, फिर आनन्द-ही-आनन्द है।

××× ××× ××× ×××

एक ध्येय बनाना है। ध्येय बनानेकी अपेक्षा पहचानना बढ़िया है। ध्येय बनाये बिना कल्याण कैसे होगा? भोग भोगना ध्येय होगा तो उन्नति कैसे होगी? चाहे सुख आये या दुःख, एक ध्येय पक्का रखें कि हमें कल्याण करना है।

कामसे अधिक समय नहीं होना चाहिये और खर्चेसे अधिक धन नहीं होना चाहिये। न संग्रह होना चाहिये, न कर्जा होना चाहिये।

××× ××× ××× ×××

जो हरदम मौजूद है, उसे हम नहीं मानते और जो हरदम बदल रहा है, जा रहा है, उसे हम मानते हैं—यह कितने आश्चर्यकी बात है!

आकाश सब जगह है। पत्थर ठोस होता है, पर उसमें भी आकाश है, तभी उसमें सर्दी-गर्मी प्रवेश करती है। सर्दीमें वह ठण्डा हो जाता है, गर्मीमें गर्म हो जाता है। उस आकाशसे भी सूक्ष्म परमात्मा हैं।

जैसे हम भगवान्‌से वर माँगते हैं, ऐसे ही खम्भे, दीवार, वृक्ष आदिसे भी वरदान माँग सकते हैं; क्योंकि भगवान् सब जगह हैं—

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

(गीता १३।१३)

'वे परमात्मा सब जगह हाथों और पैरोंवाले, सब जगह नेत्रों, सिरों और मुखोंवाले तथा सब जगह कानोंवाले हैं। वे संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित हैं।'

××× ××× ××× ×××

श्रोता—सत्संगसे क्या होता है?

स्वामीजी—सब कुछ होता है। सत्संगमें कमाया हुआ धन मिलता है। सत्संग करना गोद जाना है। नामजप और सत्संगकी बहुत महिमा गायी गयी है। **सत्-तत्त्वमें प्रेम होनेका नाम 'सत्संग' है।** सत्की तरफ आकर्षण होना चाहिये। श्रीस्वयंज्योतिजी महाराज कहते थे कि सन्त-महात्माओंमें प्रेम होनेका नाम सत्संग है। सत्संगसे मनुष्यको होश होता है। सत्संगसे विलक्षणता आ जाती है। सत्संगके प्रवाहमें पड़े-पड़े मनुष्य गंगाजीके पत्थरकी तरह गोल तथा सुन्दर हो जाता है।

××× ××× ××× ×××

संसार दीखता है, है नहीं। संसार कभी 'है' नहीं होगा और भगवान् कभी 'नहीं' नहीं होंगे। परमात्माका ही 'है'-पना संसारमें दीख रहा है।

भगवान्‌के द्वारा सम्पूर्ण संसार धारण किया हुआ है। अतः भगवान्‌ने हम सबको अपनी शरणमें ले रखा है। शरणमें लेकर हमें स्वतन्त्रता दी है। वह स्वतन्त्रता दी हुई है, अपनी नहीं है। **शरीरपर हमारा वश नहीं चलता, अपनी इच्छासे हम कुछ नहीं कर सकते, इससे सिद्ध होता है कि हम किसीके वशमें हैं।**

शरण होना नहीं है, प्रत्युत भगवान्‌ने शरण ले रखा है—ऐसा मानें। केवल उधर दृष्टि करनी है।

'मैं'-पन भी भगवान्‌के अर्पित कर दें और 'मेरा'-पन भी।

××× ××× ××× ×××

भगवान्‌ने मनुष्यशरीर दिया है तो अपनी प्राप्तिकी पूरी सामग्री भी दी है। भगवान्‌ने हमें कर्म करनेकी सामर्थ्य दी

है, अकर्तव्यका त्याग करनेके लिये विवेक दिया है और विश्वास-शक्ति दी है।

मनुष्य प्रारब्धके अनुसार पाप-पुण्य नहीं करता; क्योंकि कर्मका फल कर्म नहीं होता, भोग होता है।

गीताका अर्थ करनेका तात्पर्य है—अपनी बुद्धिका परिचय देना।

जो साधन सुगम दीखे, उसे करना शुरू कर दो तो जो कठिन है, वह सुगम हो जायगा और जो समझमें नहीं आता, वह समझमें आने लग जायगा।

आजकलका विज्ञान पत्तेसे चलकर मूलकी तरफ जाता है, पर हमारी संस्कृति मूलसे विचार करती है।

××× ××× ××× ×××

भगवान्‌को एक जगह भी देखे तो निहाल हो जाय, फिर सब जगह भगवान्‌को देखे तो कहना ही क्या है? संसार ज्यों-का-त्यों परमात्मा ही है। संसार भ्रान्ति नहीं है। संसाररूपसे भगवान् ही हैं। यही गीताको मान्य है—'**वासुदेवः सर्वम्**' (७। १९), '**मया ततमिदं सर्वम्**' (९। ४), '**सदसच्चाहम्**' (९। १९)।

संसारका सुख दुःखका बीज (योनि) है, जिससे दुःख-ही-दुःख पैदा होगा। बिना दुःखके सुख होता नहीं और सुखके बाद दुःख होता ही है। लक्ष्मी माता है, उसको जो भोग्या मानते हैं, वे पाप करते हैं।

××× ××× ××× ×××

शिष्य दो तरहके होते हैं—पहला गुरुके परायण और दूसरा, शिक्षा लेकर स्वयं उद्योग करनेवाला। जो गुरुके परायण है, उसे अपने कल्याणके लिये कुछ करना नहीं पड़ता; जैसा कि अर्जुनने

कहा है— '**शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्**' (गीता २।७) 'मैं आपका शिष्य हूँ। आपके शरण हुए मुझे शिक्षा दीजिये।'

'**वासुदेवः सर्वम्**' का साधन बड़ा सुगम है। केवल अपना भाव बदलना है। **परमात्माकी जगह ही यह संसार दीख रहा है।** संसारमें 'नहीं' मुख्य है— '**नासतो विद्यते भावः**' (गीता २।१६)। **परमात्मा ही हैं—ऐसा सरलतासे मान लेना है, जोर नहीं लगाना है। जोर लगानेसे संसारकी सत्ता दृढ़ होगी।** संसारको हटाना नहीं है। वह तो हटा हुआ (निवृत्त) ही है। मैं-तू-यह-वह कुछ नहीं है, केवल वासुदेव ही हैं।

××× ××× ××× ×××

प्रतिकूलतामें पुराने पाप नष्ट होते हैं और नयी शक्ति मिलती है। भगवान् कृपा करके प्रतिकूलता भेजते हैं।

करणकी सहायता भले ही हो, पर करणकी अपेक्षा न हो—यह 'करणनिरपेक्ष साधन' कहलाता है। स्वयंकी स्वीकृति करणनिरपेक्ष है। स्वयंकी स्वीकृति दृढ़ ही होती है, अदृढ़ नहीं। स्वयंसे भगवान्‌को सब जगह स्वीकार कर लें। ***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'***—यह स्वयंकी स्वीकृति है। विवाहिता स्त्री स्वप्नमें भी अपनेको सुहागिन ही देखती है; क्योंकि यह स्वयंकी स्वीकृति है।

भक्ति इतनी विलक्षण है कि इससे मनुष्य गुणातीत भी हो जाता है और प्रेम भी प्राप्त कर लेता है।

निर्वाहयोग्य भोग तो पहलेसे ही निश्चित है— '**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः**' (योगदर्शन २।१३), अधिक भोग, मान-आदर आदि चाहते हैं—यह गलती है।

××× ××× ××× ×××

सांख्ययोगीको तो कर्मयोगकी जरूरत है, पर कर्मयोगीके लिये सांख्ययोगकी जरूरत नहीं है—**'कर्मयोगो विशिष्यते'** (गीता ५।२)।

गीताकी भक्ति 'अद्वैतभक्ति' है। अधिभूत आदि भी भगवान् हैं तो हमारे शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि अलग कैसे रहें? वे भी **'वासुदेवः सर्वम्'** के अन्तर्गत ही हैं। **'वासुदेवः सर्वम्'** में मैं-तू-यह-वह नहीं है। इसमें सब कुछ चिन्मय हो जाता है, जड़ चीज रहती ही नहीं। **छिपनेयोग्य कोई चीज है ही नहीं, फिर भगवान् कैसे छिपें? किसके पीछे छिपें?**

भगवान्‌का आश्रय लेकर साधन करना चाहिये—**'मामाश्रित्य यतन्ति ये'** (गीता ७।२९), **'मद्व्यपाश्रयः'** (गीता १८।५६)। **यदि भगवान्‌का आश्रय न लिया जाय तो अभिमान पिण्ड नहीं छोड़ेगा। भगवत्प्राप्ति कृपासे होती है, उद्योगसे नहीं।** भगवत्कृपासे भक्त विघ्नोंको भी तर जाता है और तत्त्वप्राप्ति भी कर लेता है—

मच्चित्तः सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि। (गीता १८।५८)
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥ (गीता १८।५६)

××× ××× ××× ×××

संसारमें अभाव मुख्य है। जो कभी है, कभी नहीं है, वह कभी नहीं है। जो किसी जगह है, किसी जगह नहीं है, वह किसी भी जगह नहीं है। तात्पर्य है कि उसमें 'नहीं' ही मुख्य है। परमात्मामें 'है' ही मुख्य है।

जो किसी अवस्थामें नहीं है, वह किसी भी अवस्थामें नहीं है। भगवान् सब अवस्थाओंमें हैं। जो चीज हमें मिलनेवाली नहीं है, वह किसीको भी मिलनेवाली नहीं है। भगवान् सबके

लिये समान हैं और सबको मिल सकते हैं। अतः **संसारकी आशा न रखें और भगवान्‌से निराश न हों।**

××× ××× ××× ×××

स्वार्थ और अभिमान—ये दो चीजें बड़ी घातक हैं। इनका त्याग करके दूसरेका हित करो। दूसरेका हित कैसे हो—यह मनुष्यके ऊपर ही निर्भर है। पशु-पक्षी मनुष्यके लिये नहीं हैं, प्रत्युत मनुष्य उनके लिये है।

कर्मयोगकी प्रणाली है—दूसरेका हित करना। **अपना जीवन अपने लिये नहीं है, प्रत्युत दूसरेके हितके लिये है।** 'बुरा न करना' सबके हाथकी बात है, पर दूसरेका भला करना अरबपतिके भी हाथकी बात नहीं है। **किसीका बुरा होनेसे आप राजी होते हैं तो आपके मनमें बुरा करनेका भाव है—यह कसौटी है।** किसीका भी बुरा न करना कर्मयोगकी नींव है। बुराई छोड़नेसे दो अवस्थाएँ होंगी—सबका भला ही करेंगे अथवा कुछ भी नहीं करेंगे। कुछ नहीं करनेसे परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी।

दूसरेका हित करनेका तात्पर्य है—ऋण चुकाना। पापीकी मुक्ति (फल भोगकर) हो सकती है, पर ऋणीकी मुक्ति नहीं होती। ऋणीकी मुक्ति उसके अधीन है, जिसका ऋण है।

कर्तव्य वह होता है, जिसे कर सकते हैं और जिसे करना चाहिये। कर्तव्य है—दूसरेके अधिकारकी पूर्ति कर देना और अपना अधिकार छोड़ देना। अपने कर्तव्यका पालन करना और दूसरेके अधिकारकी रक्षा करना।

मशीन खराब हो तो हठ करनेसे अर्थात् धक्का देनेसे

काम नहीं चलेगा—**'निग्रहः किं करिष्यति'** (गीता ३। ३३)। मशीनकी खराबी ठीक करो। खराबी है—राग-द्वेष। इसलिये आगे राग-द्वेषके वशमें न होनेकी बात कही है—**'तयोर्न वशमागच्छेत्'** (३। ३४)।

× × ×   × × ×   × × ×   × × ×

करनेकी शक्ति केवल सेवाके लिये है, और यह भगवान्‌से मिली है। भगवान्‌की चीज भगवान्‌के समर्पित कर देनी चाहिये। जो मिला है, वह साधन-सामग्री है। बीमारी भी साधन-समाग्री है और नीरोगता भी। इसी तरह निर्धनता-धनवत्ता, निर्बलता-सबलता आदि सब साधन-सामग्री है। बीमारी भगवान्‌की दी हुई तपस्या है। प्रतिकूलतामें विकास होता है, और अनुकूलतामें विनाश। मनुष्यशरीर साधनशरीर है। जो परिस्थिति आती है, वह केवल साधन-सामग्री है।

× × ×   × × ×   × × ×   × × ×

व्याख्यान सुनते समय यह भाव रहे कि यह मेरे लिये है। कर्मयोगीको कर्मयोगकी बात अपने लिये समझनी चाहिये। ऐसे ही ज्ञानयोगकी अथवा भक्तियोगकी बात भी साधकको अपने लिये समझनी चाहिये।

गीताके अनुसार 'धर्म' का अर्थ है—कर्तव्यका पालन। तभी गीतामें पहले स्वभावज कर्मोंका वर्णन करके फिर कहा—**'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।'** (गीता १८। ४७)। **आज्ञा-पालन करना 'परमधर्म' है—**

सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा॥

(मानस, बाल० ७७। १, अयो० २१३। २)

उपर्युक्त बात एक बार शंकरजीने कही और एक बार

भरतजीने कही। तात्पर्य यह हुआ कि विरक्त हो या राजा (गृहस्थ), भगवान् और भक्तकी आज्ञा सबको समानरूपसे पालन करनी चाहिये। परमधर्मके लिये धर्मके आश्रयका त्याग किया जा सकता है—'**सर्वधर्मान्परित्यज्य०**' (गीता १८।६६)। '**एवं त्रयीधर्ममनुप्रपन्ना गतागतं कामकामा लभन्ते**' (गीता ९।२१) 'तीनों वेदोंमें कहे हुए सकाम धर्मका आश्रय लिये हुए भोगोंकी कामना करनेवाले मनुष्य आवागमनको प्राप्त होते हैं।' '**मामेकं शरणं व्रज**' (गीता १८।६६)—भगवान्‌की यह आज्ञा परमधर्म है। इसका पालन करनेवाला आवागमनको प्राप्त नहीं होता।

वचनमात्रसे भगवान्‌के शरण होनेपर भगवान् पीछे पड़ जाते हैं और सर्वथा शरण कराकर ही छोड़ते हैं। अर्जुनने '**करिष्ये वचनं तव**' (गीता १८।७३)—ऐसा कहा, तब भगवान्‌ने छोड़ा!

××× ××× ××× ×××

'द्विषो जहि' (शत्रुओंको नाश करो)—यह कहना ठीक नहीं है। सन्तोंने कहा है कि हमारे शत्रु सदा जीते रहें; क्योंकि वे हमें सचेत करते हैं।

सबसे बढ़िया है—त्याग। सेवा तो करे, पर चाहे कुछ नहीं। दूसरोंकी सेवा करनेके लिये ही मानवजन्म है।

संसारकी थोड़ी भी वासना मुक्त नहीं होने देगी।

××× ××× ××× ×××

टीकाओंको देखनेके कारण गीताका असली अर्थ समझमें नहीं आता। गीताकी खास बात है—समता। किसी भी योग-मार्गसे चलो, अन्तमें समता आनी चाहिये।

भोग और संग्रहका त्याग किये बिना व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं होगी। **गीतामें वेदोंकी निन्दा नहीं है, प्रत्युत सकामभाववाले व्यक्तियोंकी निन्दा है।**

प्रत्येक कार्य भगवान्‌के लिये करें। हमारी क्रियासे किसीको कष्ट न हो, दु:ख न हो। अपना-अपना काम ठीक तरहसे करें। हरदम सावधानी रखें। सावधानी ही साधना है। **हरदम सावधान रहनेवाला ही साधक होता है।**

××× ××× ××× ×××

अन्त:करणकी शुद्धि क्रियाकी सिद्धिमें काम आती है। परमात्मतत्त्व अन्त:करणसे अतीत है। अत: परमात्मप्राप्ति अन्त:करणके द्वारा नहीं होती, फिर उसमें अन्त:करणकी शुद्धि-अशुद्धि क्या काम आयेगी? तत्त्वज्ञान जिज्ञासुको होता है। **अन्त:करणकी शुद्धिसे तत्त्वज्ञान नहीं होता।** मनोनाशसे, मन एकाग्र करनेसे समाधि होगी, सिद्धियाँ आयेंगी। सिद्धियाँ परमात्मप्राप्तिमें विघ्न हैं।

विहाय कामान्य: सर्वान्पुमांश्चरति नि:स्पृह:।
निर्ममो निरहङ्कार: स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २।७१)

किसी भी अप्राप्त वस्तुकी कामना न रहे। स्पृहा अर्थात् किसी वस्तुकी परवाह, आवश्यकता भी न रहे। पासमें जो वस्तु है, उसमें ममता भी न रहे। अहंकार अर्थात् मैंपन भी न रहे। **निरहंकार होनेपर 'मैं निरहंकार हो गया'—यह अहम् भी नहीं रहता।** इसलिये इसे 'ब्राह्मी स्थिति' कहा गया है—**'एषा ब्राह्मी स्थिति:'** (गीता २।७२)। वास्तवमें उसकी कोई स्थिति नहीं होती। वह स्थितिसे अतीत होता है।

गंगा-स्नान पाप धोनेके लिये है, मैल धोनेके लिये नहीं।

××× ××× ××× ×××

इन्द्रियसे जिस विषयके भावका ज्ञान होता है, उस विषयके अभावका ज्ञान भी उसी विषयसे होता है। यह मीठा है और यह मीठा नहीं है—दोनोंका ज्ञान रसनेन्द्रियसे होता है। ऐसे ही अहम्‌के भाव और अभावका ज्ञान स्वयंको होता है। कारणशरीर 'अज्ञान' है—'**अज्ञानमेवास्य हि मूलकारणम्**' (अध्यात्म० उत्तर० ५।९)। अपने स्वभावका खास ज्ञान स्वयंको होता है। स्वयं अहंकारको जानता है—'**एतद्यो वेत्ति**' (गीता १३।१), अतः अहंकारके अभावको भी वह जानता है।

××× ××× ××× ×××

विवेक अनादि है। यह उत्पन्न नहीं होता। मनुष्य अहम्‌को अपना स्वरूप मानता है। वास्तवमें अहम् भी मिट्टीके ढेलेकी तरह 'इदम्' अथवा 'पर' है। मन करण है। मनको न लगाकर आप स्वयं लग जाओ। स्वयं लगनेसे भूल नहीं होगी; जैसे—'मैं ब्राह्मण हूँ', 'मैं विवाहित हूँ' आदिमें भूल नहीं होती।

चाहे स्थूल-सूक्ष्म-कारण शरीरकी सेवा करो अथवा स्थूल-सूक्ष्म-कारण सृष्टिकी सेवा करो—यह सब 'पर'की सेवा है। अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये करना भी 'पर'के लिये करना है। चिन्तन करना, समाधि लगाना भी 'पर'के लिये करना है।

सिद्ध महापुरुषकी समाधि और व्युत्थान—ये दो अवस्थाएँ नहीं होतीं। प्रकृतिका विभाग अलग है, स्वरूपका विभाग अलग है। स्वरूप प्रकृतिका अंश नहीं है। 'अहम्' हमारा स्वरूप नहीं है। अहम्‌तक सब विषय है। स्वरूप विषयी है। स्वरूप

और अहम् अलग-अलग हैं—इसका ज्ञान सुषुप्तिमें सबको होता है। प्रकृतिका कार्य ही प्रकृतिमें लीन होता है, स्वयं नहीं। सुषुप्तिमें अहम् लीन होता है, स्वयं नहीं। स्वयं किसी भी अवस्थामें लीन नहीं होता। विवाह स्वयंकी स्वीकृति है। स्वयंकी स्वीकृतिमें भूल नहीं होती और मन भी लगाना नहीं पड़ता।

अहंकार कभी घटता है, कभी बढ़ता है; अत: वह आपका स्वरूप कैसे हुआ? अहंकारके बिना आप रहते हैं, पर आपके बिना अहंकार नहीं रहता।

साधकका सम्बन्ध साधनोंसे नहीं है, प्रत्युत साध्यसे है। योगकी सब सिद्धियाँ ऐश्वर्य हैं। ऐश्वर्यमें फँसे व्यक्तिकी मुक्ति नहीं होती—'**भोगैश्वर्यप्रसक्तानां..........समाधौ न विधीयते॥**' (गीता २।४४)।

×××   ×××   ×××   ×××

साधकको विशेष सावधान रहना चाहिये। हरेक उम्रके व्यक्तिको भगवान्‌में लगना है। **जो बचपन और जवानीमें भजन नहीं करते, वे बुढ़ापेमें भजन नहीं कर सकते।**

साधक वह है, जो चौबीस घण्टे साधन करे। **चौबीस घण्टोंमें एक मिनट भी साधन न करे तो वह साधक नहीं है।** ऐसे अखण्ड साधनके लिये मैं-पन बदलनेकी जरूरत है। जैसे, सुहागिन एक मिनटके लिये भी दुहागिन नहीं होती। मैं-पन स्वीकृतिसे बदलता है। मैं भगवान्‌का हूँ—ऐसा स्वयंसे स्वीकार कर लें। स्वयंकी स्वीकृतिमें भूल नहीं होती। विवाहिता स्त्री एक बिंदी भी लगाती है तो पतिके सम्बन्धसे।

ज्ञानमार्गमें जो भी देखने, सुनने आदिमें आता है, वह सब माया है। भक्तिमार्गमें दसों दिशाओंमें जो कुछ भी दीखता

है, वह भगवान् ही हैं। देखने, सुनने, सोचने आदिमें जो आता है, वह भगवान् ही हैं। **सब कुछ भगवान् हैं—यह 'अभेद भक्ति' है।** यह गीताकी सर्वोपरि बात है। हमारी समझमें न आये तो हमारी समझ कच्ची है, पर बात सच्ची है।

जबतक हमारी दृष्टिमें दूसरी सत्ता है, तबतक मन एकाग्र नहीं हो सकता। 'वासुदेवः सर्वम्' में दूसरी सत्ता ही नहीं है।

××× ××× ××× ×××

सुख भी व्यथा है, दुःख भी व्यथा है। न सुख रहनेवाला है, न दुःख रहनेवाला है, फिर राजी-नाराज क्यों होते हो? आप तो निरन्तर रहनेवाले हो। रबरकी गेंद बनो, मिट्टीका लौंदा नहीं! न राग करना है, न द्वेष, प्रत्युत उपराम होना है। संसारके साथ सम्बन्ध माननेसे ही द्वन्द्व होता है। अतः ***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'***—ऐसा माननेसे स्वतः निर्द्वन्द्व हो जायगा।

जैसे चिन्तन करना दोष है, ऐसे ही चिन्तन न करना भी दोष है। अतः चिन्तन करने और न करनेको छोड़कर 'चुप' होना है। '**न योत्स्ये**' (युद्ध नहीं करूँगा) भी दोष है और '**योत्स्ये**' (युद्ध करूँगा) भी दोष है, इसलिये अर्जुनने कहा— '**करिष्ये वचनं तव**' (गीता १८।७३) 'आपकी आज्ञाका पालन करूँगा'।

××× ××× ××× ×××

नेत्रोंका (इन्द्रियोंका) ज्ञान बुद्धिके ज्ञानके आगे अज्ञान है। जैसे, हवाई जहाज नेत्रोंसे छोटा दीखता है, पर बुद्धिसे बड़ा दीखता है। परन्तु स्वयंके ज्ञानके आगे बुद्धिका ज्ञान भी रद्दी (महत्त्वहीन) हो जाता है।

जो भगवान्‌का भजन नहीं करते, उन्हें मनुष्य नहीं कहकर 'मल-मूत्र बनानेकी मशीन' कहना चाहिये।

नरकोंका दरवाजा लोभ है, पैसा नहीं। साधनमें भी लोभ नहीं करना चाहिये। जो साधन कर सकते हो, वह साधन करो। जो साधन नहीं कर सकते, वह साधन (चुप साधन आदि) मत करो, उसका लोभ मत करो।

समुद्र लहरोंका है या लहरें समुद्रकी हैं—इसकी तरफ न देखकर जल-तत्त्वको देखो। जल-तत्त्व एक है।

××× ××× ××× ×××

असत्‌की सत्ता ही नहीं है; अतः असत्‌का संग होता ही नहीं। जीव सकामभाव करता है, वह सकामभाव ही असत्‌का संग करता है, जीवको बाँधता है। जीव स्वयं असंग है।

कर्मयोग तथा ज्ञानयोग निर्गुणकी तरफ जाते हैं। उत्तरी भारतमें ज्ञानकी बात विशेष चलती है, दक्षिण भारतमें भक्तिकी।

प्रत्येक सम्प्रदायमें निन्दा-अंश त्याज्य है और विधि-अंश ग्राह्य है। साधकके लिये गीतोक्त समग्र ब्रह्मकी बात बढ़िया है।

भगवान्‌ने अपने कानूनमें ही दया भरी हुई है।

भगवान्‌में लगे मनुष्यके द्वारा दुनियाका जितना उपकार होता है, उतना लाखों-अरबों रुपये लगाकर भी उपकार नहीं हो सकता। गोस्वामी तुलसीदासजीने स्वान्तःसुखाय रामायण लिखी, उससे कितने लोगोंको शान्ति मिलती है, कितने लोगोंकी जीविका चलती है, कितने लोग भगवान्‌में लगते हैं!

××× ××× ××× ×××

अभ्याससे एक नयी अवस्था बनती है, तत्त्वकी प्राप्ति नहीं

होती। तत्त्वकी प्राप्ति उपराम होनेसे होती है। किसीसे भी न राग करे, न द्वेष करे। राग-द्वेष करनेसे उसको हमारा आधा बल मिल जाता है, सत्ता मिल जाती है। जैसे, बालिके सामने जो जाता था, उसका आधा बल बालिको मिल जाता था—ऐसा उसे वरदान प्राप्त था। इसलिये रामजीने उसको छिपकर मारा।

संसारका सुख लेनेके लिये पहले दुःख चाहिये। सुखके बाद भी दुःख होता है। सुख भी आदि-अन्तवाला होता है।

××× ××× ××× ×××

परमात्मतत्त्व सबको प्राप्त है। '**वासुदेवः सर्वम्**' स्वतःसिद्ध है, केवल दृष्टि बदलनी है। तत्त्वमें परिश्रम नहीं है। परिश्रममें थकावट होती है। तत्त्वप्राप्तिमें थकावट नहीं होती। तत्त्व स्वतन्त्र है। उसके लिये कुछ भी चिन्तन आदि करेंगे तो परतन्त्रता होगी।

भगवान्‌का नाम, रूप आदि प्यारा, मीठा लगने लगे—यह भक्तिका अंकुर है। भगवान्‌में प्रेम होना भक्ति है।

××× ××× ××× ×××

हम शरीरको लेकर 'मैं हूँ' कहते हैं। परन्तु 'मैं वही हूँ जो बालकपनमें था'—इसमें स्वरूपकी तरफ लक्ष्य है। 'मैं नहीं हूँ'—ऐसे अपने अभावका अनुभव कभी किसीको नहीं होता। स्वरूपके सिवाय सबके अभावका अनुभव होता है। **परमात्मतत्त्वके साथ हमारा एक कण और क्षण-जितना भी वियोग नहीं है।**

शरीर ब्रह्माण्डका नमूना है। जैसे ब्रह्माण्डमें परमात्मा हैं, ऐसे शरीरमें आत्मा है—*'सिंह नहिं दीखे, देख बिलाई। यम नहिं दीखे, देख जवाई॥'*

समाधि-अवस्थामें मस्तक सीधा रहता है, नींदमें आगे झुकता है, जड़तामें पीछे जाता है और विक्षेप या स्वप्नमें दायें-बायें झुकता है।

मनुष्यशरीर परमात्मप्राप्तिके लिये ही मिला है, भोग व संग्रहके लिये नहीं। भोग व संग्रहमें लगनेसे पश्चात्ताप करना पड़ेगा। **जो करनेलायक काम न करे, उसे पश्चात्ताप करना पड़ता है।**

एक उद्देश्य होनेपर अनुकूल-प्रतिकूल सब सहायक हो जाते हैं। त्यागीकी सेवा दुनिया करती है।

भगवान्‌की तरफ चलनेवालेसे पवित्रता-ही-पवित्रता आती है। उसके द्वारा संसारमात्रका भला होता है; जैसे—सूर्य जहाँ-जहाँ जाता है वहाँ-वहाँ दिन हो जाता है।

××× ××× ××× ×××

सम्पूर्ण सृष्टिका कारण 'अहम्' है। अहम्‌में ही सम्पूर्ण सृष्टि भरी हुई है। जबतक अहम् है तबतक साधक-साधन-साध्यका भेद रहता है। अहम् न रहनेपर साधक साधन होकर साध्यमें लीन हो जाता है।

××× ××× ××× ×××

न बाहरसे कुछ करें, न भीतरसे। इससे बड़ी शान्ति, विश्राम मिलता है। यह साधन हाथ लग जाय तो क्रिया भारी लगने लगेगी। सहजावस्था सबको प्राप्त है, पर क्रियाशीलतामें आसक्तिके कारण उसका अनुभव नहीं होता।

साथी और सामानके बिना विश्राम होता है। चिन्तन करनेसे प्रकृतिका संग होता है। जैसे घर पहुँचनेपर फिर चलना नहीं

होता, ऐसे यह (तत्त्व) असली घर है, यहाँ चिन्तन आदि कुछ भी करना नहीं होता।

××× ××× ××× ×××

भगवान् विश्वासका विषय हैं, विचारका नहीं। भक्तिका मार्ग विश्वास-मार्ग है। चार बातें हैं—ग्रहण करनेका विषय, त्याग करनेका विषय, जाननेका विषय और माननेका विषय। भगवान् सत्-असत् सब कुछ हैं—यह माननेका विषय है। जानना ज्ञान (विवेक)-मार्गमें होता है। ग्रहण और त्याग शास्त्रके अनुसार होना चाहिये।

विष भी भगवान् हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं कि विष खा लें।

पूर्व युगोंके विधि-विधान कल्याणके लिये होते थे। परन्तु कलियुगमें वही विधि-विधान होते हैं; जिनसे नरकोंकी प्राप्ति हो जाय!

××× ××× ××× ×××

विचार करें, आपकी दृष्टिमें कोई चीज स्थिर रहनेवाली दीखती है क्या? जिसपर आप भरोसा करो, आश्रय लो, ऐसी कोई चीज स्थिर दीखती है क्या? किसके भरोसे निश्चिन्त बैठे हो? आप सदा रहना चाहते हो या मरना चाहते हो? रहना चाहते हो तो क्या शरीरसे रह जाओगे? मिटनेवालेका सहारा कबतक टिकेगा? कम-से-कम जो चीजें नाशवान् या बिछुड़नेवाली दीखती हैं, उनका भरोसा, विश्वास छोड़ दो। क्या हम सदा बोलते ही रहेंगे? क्या हमारी सुनने-सुनाने, चलने आदिकी सामर्थ्य सदा रहेगी? यह तो सब बन्द होगा! **जब यह विश्वास हो जायगा कि कोई सहारा रहनेवाला**

नहीं है, तब भगवान्‌का सहारा अपने-आप होगा! नाम-जप अपने-आप होगा।

किसी तरहसे भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़ लो। नाम-जप करो तो जबानसे, पुस्तक पढ़ो तो नेत्रोंसे, चिन्तन करो तो मनसे भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जुड़ गया।

××× ××× ××× ×××

मेरे विचारसे गीताका सर्वोपरि सिद्धान्त है—'**वासुदेवः सर्वम्**' (७।१९)। इसका अनुभव करनेवाले महात्माको भगवान्‌ने अत्यन्त दुर्लभ बताया है—'**स महात्मा सुदुर्लभः**' (गीता ७।१९) और अपनेको सुलभ बताया है—'**तस्याहं सुलभः**' (गीता ८।१४)। भगवान् प्रसन्न होते हैं तो मानवशरीर देते हैं, जिससे जीव नरकोंमें भी जा सकता है! पर महात्मा तो भगवान्‌की ही प्राप्ति कराते हैं। उस महात्माका स्वरूप बताया है—'**वासुदेवः सर्वम्**'।

पेड़ोंमें चाहे आम न लगे हों तो भी उसे आमका बगीचा कहते हैं। खेतमें बाजरी न होनेपर भी उसे बाजरीकी खेती कहते हैं। इसी तरह भगवान्‌ने अपने-आपको सबका बीज बताया है—

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्।

(गीता ७।१०)

प्रभवः प्रलयः स्थानं निधानं बीजमव्ययम्॥

(गीता ९।१८)

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।

(गीता १०।३९)

भगवान्‌ने सृष्टि-रचना की तो कहींसे मसाला मँगवाया?

वे खुद ही संसार बन गये—'**एकोऽहम् बहुः स्याम्**'। आदि और अन्तमें बीज रहता है। ऐसे ही सृष्टिके आदि और अन्तमें भगवान् ही है, तो फिर बीचमें दूसरा कहाँसे आया? एक ही जल भाप, कोहरा, वर्षा, ओले, बर्फ आदि अनेक रूपोंसे हो जाता है, ऐसे ही एक परमात्मा अनेक रूपोंसे हो रहे हैं। सोनेसे बने अनेक गहनोंमें सोनेके सिवाय क्या है? परमात्मासे बने संसारमें सब कुछ परमात्मा ही हैं। सोनेसे बनी विष्णुकी मूर्ति हो या कुत्तेकी, सोनेमें क्या फर्क है? ऐसे ही संसारमें कोई महात्मा है, कोई दुष्ट, पर परमात्मतत्त्व सबमें एक ही है।

श्रोता—'वासुदेवः सर्वम्' होते हुए भी अविनाशी-विनाशीका भेद कहाँसे आया?

स्वामीजी—आपके यहाँसे आया! यह भेद मनुष्यने पैदा किया है और वही इसे मिटा सकता है।

××× ××× ××× ×××

करना हो तो सेवा करो। विचार करो कि सबका भला, सुख, हित कैसे हो? अपने सुख, स्वार्थके लिये तो पशु-पक्षी भी लगे हुए हैं, पर यह मनुष्यका काम नहीं है। सबसे दुर्लभ चीज—मनुष्यशरीर तो हमें मिल गया, अब और क्या चाहिये? अब केवल सेवा और भजन करो।

××× ××× ××× ×××

भगवान्की विशेष कृपासे मनुष्यशरीर मिलता है। मनुष्य-शरीर, मुमुक्षा और सत्संग—ये तीनों दुर्लभ हैं। सत्संग मिल जाय, भगवान्की याद आ जाय तो इसे भगवान्की विशेष कृपा समझनी चाहिये।

एक-दूसरेको भगवान्‌की याद कराते रहें, भगवान्‌की चर्चा करते रहें। दीपक तले अँधेरा रहता है, पर दो दीपक आमने-सामने रख दें तो अँधेरा नहीं रहता।

जो बीत गया है, उसे होनहार ही समझना चाहिये और जो नहीं आया है, उसपर विचार करना चाहिये—'हेयं दुःखमनागतम्' (योगदर्शन २।१६)।

××× ××× ××× ×××

शास्त्र और सन्तोंकी वाणीमें नामजप तथा सत्संगकी बड़ी महिमा आयी है। सत्संगका फल तत्काल दीखता है— ***'मज्जन फल पेखिअ ततकाला'*** (मानस, बाल० ३।१)। **शास्त्रोंको पढ़नेसे उतना ज्ञान नहीं होता, जितना सत्संगसे होता है। शास्त्र पढ़नेवालेसे भूल हो सकती है, सत्संग करनेवालेसे नहीं।** सत्संग करनेसे शास्त्र और तरहके दीखने लगते हैं। सत्संग करनेके बाद रामायण, भागवत आदि ग्रन्थ विलक्षण दीखने लगते हैं। सत्संगसे गहरी बातोंका ज्ञान होता है और मुफ्तमें (बिना उद्योग किये) होता है। सत्संगमें कमाया हुआ धन मिलता है। सत्संगसे जल्दी और विशेष लाभ होता है। कारण कि **ज्यादा संसार कानोंके द्वारा (सुननेसे) भीतर प्रविष्ट हुआ है; अतः सत्संग सुननेसे ही संसार बाहर निकलेगा।**

××× ××× ××× ×××

मनुष्यशरीर तो प्राप्त हो गया, अब केवल 'मेरा कल्याण हो जाय'—यह इच्छा हो जाय। मुझे तो साधन ही करना है—यह भाव हर समय अटल रहना चाहिये। कोई भी काम साधन-विरुद्ध नहीं होना चाहिये। निषेधात्मक साधन तेज होता है। **साधककी खास बात है—बुराईका त्याग करना।** न बुरा चाहें, न बुरा

चिन्तन करें, न बुरा कहें, न बुरा करें। हमारे द्वारा किसीका भी बुरा न हो। इस विषयमें सावधान रहनेकी बड़ी आवश्यकता है। भगवान्‌से भी प्रार्थना करो कि हे नाथ! मेरे द्वारा किसीका अहित न हो जाय। किसीका अहित न करनेसे हित करना शुरू हो गया! किसीका भी अहित न करना साधकमात्रका काम है।

निषेधात्मक साधनसे जल्दी कल्याण होता है। किसीमें बुराई दीखे तो विचार करें कि ये भगवान्‌के लाड़ले बेटे हैं, ज्यादा लाड़-प्यारसे बिगड़ गये हैं। अथवा यह विचार करें कि भगवान् जैसा रूप धारण करते हैं वैसा ही काम करते हैं। जैसे भगवान् नरसिंह प्रह्लादजीको चाटते हैं; क्योंकि पशु चाटते हैं। भगवान् कलियुगमें कलिकी लीला करते हैं। हम बुद्धको भगवान् मानते हैं, पर उनके सिद्धान्त थोड़े ही मानते हैं!

दूसरोंमें जो दोष दीखते हैं, वे आगन्तुक हैं। जैसे, चेहरेपर साबुन लगा हो तो उसे देखकर हमें दुःख नहीं होता— ***'सब जग ईस्वररूप है, भलो बुरो नहिं कोय'।***

××× ××× ××× ×××

उत्कट अभिलाषा न होनेसे ही परमात्माकी प्राप्ति कठिन हो रही है। उत्कट अभिलाषा हो तो परमात्मप्राप्तिमें देरीका कोई कारण नहीं है। हमारे सम्मुख होनेमें ही कमी है। इस कमीका कारण है—भोग और संग्रहकी इच्छा। परमात्मप्राप्तिमें देरी नहीं है, पर हमारी लगनकी कमीसे देरी हो रही है।

संसारकी प्राप्ति इच्छाके अधीन नहीं है, परमात्मप्राप्ति इच्छाके अधीन है। **उत्कट इच्छासे भी परमात्मा मिलते हैं और कोई भी इच्छा न रहनेसे भी परमात्मा मिलते हैं।**

××× ××× ××× ×××

शिष्यके धनका हरण करनेवाले गुरु तो बहुत हैं, पर उसके हृदयके तापका हरण करनेवाले गुरु दुर्लभ हैं—

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः।
तमेकं दुर्लभं मन्ये शिष्यहृत्तापहारकम्॥

जो परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिका ठीक मार्ग बता दें, वे गुरु हैं। **खास गुरु वह है, जिसके वचनोंसे हम संसार, जीव और परमात्मा—तीनोंको जान जायँ। इन तीनोंको न जानना ही अंधकार है। इस अंधकारको जो मिटा दे, वह गुरु है।** जगत् और जीवको तो जान सकते हैं, पर परमात्माको जान नहीं सकते, प्रत्युत मान ही सकते हैं।

सूर्य तो बाहरका अंधकार दूर करता है, पर गुरु वह होता है, जो हृदयका अंधकार दूर कर दे।

××× ××× ××× ×××

भगवान्‌के शरण हो जायँ। अपना सब कुछ प्रभुमें मिला दें, उसीमें तल्लीन हो जायँ। जैसे, गुरुभक्त गुरुमें ही तल्लीन हो जाता है। हम सदासे ही भगवान्‌के हैं। हम सदासे ही भगवान्‌के शरण हैं। इसकी पहचान है कि क्या हमने अपनी इच्छासे यह जन्म लिया है? शरणागतिमें परिश्रम नहीं करना पड़ता, यह नींद लेनेके समान सुगम है। पर इसमें अभिमान बाधक है।

××× ××× ××× ×××

एक दिन यह सब कुछ छोड़कर जाना पड़ेगा। संसारमें हरेक चीजकी आयु है। यहाँ कोई भी चीज रहनेवाली नहीं है। एक दिन सबका वियोग होगा। मिलना अनित्य है, पर बिछुड़ना नित्य है।

और निःसन्देह बात है। संसारका सम्बन्ध सदासे नहीं है और सदा साथ नहीं रहेगा। ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, जो जन्मा है, पर मरेगा नहीं। दूसरोंकी सेवा करो, पर दूसरे हमारी सेवा करें—यह आशा मत रखो।

××× ××× ××× ×××

भगवान्‌में अपने-आपको लगाना करणनिरपेक्ष है और मन-बुद्धिको लगाना करणसापेक्ष है। दूसरी सामग्रीसे काम न लेकर अपने-आप करना करणनिरपेक्ष होता है। स्वयंको बदलना करणनिरपेक्ष है। जहाँ स्वयं होता है, वहाँ करणकी जरूरत नहीं होती। करणसापेक्षमें अभ्यास होता है। अभ्याससे कल्याण नहीं होता। अभ्यास कभी करणरहित हो सकता ही नहीं। **अभ्यास करनेवाला ही योगभ्रष्ट होता है।**

××× ××× ××× ×××

यदि अपने कर्तव्यका दृढ़तासे पालन करें तो कल्याण हो जायगा, अलग साधन करनेकी जरूरत नहीं है। कर्तव्यपालनमें जितनी अधिक तत्परता होगी, उतनी जल्दी सिद्धि होगी। विधिकी अपेक्षा भी निषेधका ज्यादा आदर करना चाहिये। **विधिकी कमी तो माफ हो जायगी, पर निषेध माफ नहीं होगा।** इसलिये निषेधात्मक साधन तेज होता है।

××× ××× ××× ×××

मिली हुई वस्तु अपनी नहीं है और बिछुड़नेवाली है। **न जीनेकी इच्छा करे, न मरनेकी। इच्छा कोई न करे।** अनुकूलताकी इच्छा करनेसे अनुकूल परिस्थिति बनी रहेगी—यह कोई नियम नहीं है। **जितना सुख भोगेंगे, उतना ही स्वभाव बिगड़ेगा।**

सेवा और प्रेमकी भूख भगवान्‌को भी है।

××× ××× ××× ×××

वस्तुओंको भगवान्‌के अर्पण करनेका अर्थ है—मेरापन छोड़ देना अर्थात् उसे अपना न मानना। अर्पण करनेसे आपकी एक तोलाभर वस्तु घटेगी नहीं, पर निहाल हो जाओगे!

भक्तमें भाव (श्रद्धा-विश्वास)-की और ज्ञानीमें विचार (विवेक)-की प्रधानता होती है। एक राजाने महल बनाया। उसमें कारीगरीके लिये दो आदमी बुलाये गये। राजाने पूछा तो एकने कहा कि मैं चित्रकार हूँ, और दूसरेने कहा कि मैं विचित्रकार हूँ। राजाने दोनोंको दीवारपर चित्र बनानेके लिये कह दिया। दोनोंने कमरेके बीचमें परदा लगवा दिया। एक दीवारपर चित्रकारने रंग-बिरंगे चित्र बनाने शुरू कर दिये। उसके सामनेकी (परदेके पीछेकी) दीवारपर विचित्रकारने दीवारको साफ करना शुरू कर दिया। चित्रकारने तो दीवारको रंग-बिरंगे चित्रोंसे सजा दिया और विचित्रकारने दीवारको दर्पणकी तरह साफ कर दिया। जब बीचका परदा हटाया गया तो चित्रकारके बनाये चित्र सामनेकी दीवारपर प्रतिबिम्बित हो उठे! भक्त चित्रकार है, जो जगत्‌को भगवत्स्वरूप देखता है और ज्ञानी विचित्रकार है, जो जगत्‌का निषेध करके ब्रह्मको देखता है। जो संसारसे सुख चाहता है, वह न चित्रकार है, न विचित्रकार है। सुख चाहनेवालेके लिये यह संसार दुःखालय है और सेवा करनेवालेके लिये परमात्माका स्वरूप है।

××× ××× ××× ×××

सब संसार साक्षात् परमात्माका स्वरूप है। परन्तु जो लोग

मायासे मोहित हैं, उन्हें इसमें गुण-दोष दीखते हैं। गुण-दोष न देखकर भगवान्‌को देखें तो भगवान् प्रकट हो जायँगे।

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक॥

(मानस ७।४१)

न गुण देखे, न दोष देखे, प्रत्युत परमात्माको देखे। कोई पाप-अन्याय करता दीखे तो समझे कि भगवान् कलियुगकी लीला कर रहे हैं अथवा भगवान्‌के लाड़ले हैं, ज्यादा लाड़से बिगड़े हुए हैं!

विवेकज्ञान आरम्भ है, स्वरूपज्ञान अन्त है। विवेकका फल वैराग्य बताया गया है। सत्-असत्‌को अलग-अलग जानना विवेक है। संसारका ज्ञान होनेसे संसारसे वैराग्य हो जाता है।

××× ××× ××× ×××

संसारका काम तो कोई भी कर लेगा, पर अपना कल्याण कौन करेगा? यह काम सबसे पहले करनेका है। इसीके लिये मानवशरीर मिला है। कुछ करना, जानना और पाना बाकी न रहे—इस पूर्णताके लिये शरीर मिला है। यह काम कठिन नहीं है, सुगम है। इसके सब अधिकारी हैं। इसमें सावधान रहें। सावधानी ही साधना है।

××× ××× ××× ×××

अत्यन्त विरक्त ज्ञानयोगका, संसारमें फँसा कर्मयोगका और न विरक्त, न आसक्त भक्तियोगका अधिकारी है—ऐसा भागवतमें आया है। भक्तियोगमें भगवान्‌के शरण हो जाना मुख्य है। हृदयसे भगवान्‌का हो जाय। सब कर्म भगवान्‌के लिये ही करे। हम संसारके नहीं हैं; अतः मान-आदर, प्रशंसा-निन्दाका असर नहीं पड़ना चाहिये।

जैसे फैक्टरीमें काम करनेवाला व्यक्ति माँ-बापका होते हुए ही कर्मचारी है, ऐसे ही हम भगवान्‌के होते हुए ही ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि हैं। जैसे—भगवान् अजन्मा होते हुए ही अवतार लेते हैं—**'अजोऽपि सन्'** (गीता ४।६)। सब कार्य करते हुए भी उनका ईश्वरपना ज्यों-का-त्यों रहता है। पिताकी आज्ञा मानते हुए भी भगवान् श्रीरामका पितापर शासन ज्यों-का-त्यों रहता है। इसी तरह सब कार्य करते हुए भी हमारा भगवान्‌से अपनापना नहीं छूटता। सबसे पहले हम भगवान्‌के हैं। माता-पिताके होनेसे पहले भी हम भगवान्‌के हैं। **संसारके तो हम बने हैं, पर भगवान्‌के स्वतः हैं।**

××× ××× ××× ×××

जो जीवके कल्याणमें बाधा देता है, भगवान्‌की भक्तिमें बाधा देता है, उसे भगवान् क्षमा नहीं करते। जो भगवान्‌की तरफ जानेमें बाधा दे, वह भगवान्‌का वैरी होता है। भक्तके प्रति किया अपराध भगवान् माफ नहीं करते—

जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥

(मानस, अयोध्या० २१८।३)

जो दूसरेको भगवान्‌के नाम, कीर्तन, सत्संग आदिमें लगाता है, उससे भगवान् बहुत राजी होते हैं।

भगवान्‌को अपने बलका अभिमान अच्छा नहीं लगता, तभी कहा है—***'निरबल के बल राम'।***

जीवमात्रका स्वभाव है—किसी-न-किसीका आश्रय लेना। सबसे बढ़िया आश्रय भगवान्‌का है। अन्य कोई आश्रय टिकनेवाला नहीं है।

××× ××× ××× ×××

ज्ञानयोग विवेक-मार्ग है। ज्ञानयोग उनके लिये है जो

अत्यन्त विरक्त हों, जो ब्रह्मलोकतकके सुखोंको न चाहें। भक्तियोग विश्वास-मार्ग है। सब कुछ भगवान् ही है—ऐसा विश्वास कर ले। भक्तिमार्ग श्रेष्ठ है और सुगम भी है। ज्ञानी कहता है कि जो दीखता है, वह नाशवान् है। भक्त कहता है कि भगवान् ही अनेक रूपोंमें दीखते हैं। ज्ञानमार्गमें गुरु ज्ञान देता है, भक्तिमार्गमें भगवान् ज्ञान देते हैं।

××× ××× ××× ×××

प्रारब्ध भोगमें हेतु है, कर्ममें नहीं। सुखासक्तिका त्याग साधकके लिये बहुत आवश्यक है। सुखासक्ति बहुत बाधक है। भोग तथा संग्रहसे भी सूक्ष्म मान-बड़ाईका सुख है।

द्वैत-अद्वैत साधन हैं। तत्त्व न द्वैत है, न अद्वैत है।

सन्त-महापुरुषोंके संग (सत्संग)-से रसबुद्धि दूर हो जाती है।

शरीरमें मैं-मेरापन रहते हुए भक्ति शुरू हो सकती है, ज्ञान शुरू नहीं हो सकता।

××× ××× ××× ×××

अपने अनुभवकी तरफ ध्यान दें तो भगवान्में प्रेम और संसारसे वैराग्य स्वतः हो जायगा। हमारा अनुभव है कि शरीर-संसार प्रतिक्षण बदल रहे हैं, कभी एक समान नहीं रहते। इनके साथ हम कबतक रहेंगे? शरीर जी नहीं रहा है, हरदम मर रहा है। शरीर बना रहे—यह हमारे अनुभवसे विरुद्ध है। हमें उस चीजको लेना है जो सदा हमारे साथ रहे। जो रहनेवाला है उससे प्रेम करो, उसको अपना मानो। जो जानेवाला है उसकी सेवा करो, उसको सुख पहुँचाओ, उससे अच्छे-से-अच्छा बर्ताव करो। सब संसार जानेवाला है। जानेवालेकी

सेवा करो और रहनेवालेको याद करो। जानेवालेसे आशा मत रखो, नहीं तो रोना-पछताना पड़ेगा।

जो माता-पिताकी सेवा नहीं करता, वह भगवान्‌की सेवा क्या करेगा! सबकी सेवा करो, अपनी इज्जत मत खोओ। सबसे अच्छा बर्ताव करना अमृतका विस्तार करना है और बुरा बर्ताव करना विषका विस्तार करना है। बड़े-बूढ़ोंकी सेवा करके उनकी प्रसन्नता लो। कुछ साथ नहीं जायगा, पर स्वभाव साथ जायगा। इसलिये स्वभावको शुद्ध बनाओ। **सन्त आता है तो सब लोग प्रसन्न हो जाते हैं, डाकू आता है तो सब दुःखी हो जाते हैं। केवल स्वभावका फर्क है!**

××× ××× ××× ×××

नामजप सभी प्रकारके योगियोंके लिये आवश्यक है। कलियुगमें नामजपका विशेष प्रभाव है; क्योंकि कलियुगमें दूसरे साधन ठीक तरहसे नहीं होते।

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥

(मानस, बाल० २७।४)

भगवान्‌ने सारी शक्ति नाममें रख दी है। चैतन्य महाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नानुरागः॥

(शिक्षाष्टक २)

'भगवान्‌ने अपने बहुत प्रकारके नामोंका प्रचार किया है। उन नामोंमें भगवान्‌ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति भी अर्पित (स्थापित)

कर दी है। उन नामोंके स्मरणके विषयमें समय-सम्बन्धी कोई नियम भी नहीं है। हे भगवन्! आपकी तो ऐसी कृपा है, पर मेरा ऐसा दुर्भाग्य है कि आपके ऐसे नाममें भी मेरा अनुराग उत्पन्न नहीं हुआ!'

नामजपके सभी अधिकारी हैं। अतः हर समय नामजप करते रहें और मनसे प्रार्थना भी करते रहें कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं।' नामजप बीमा है। नामजप करते रहें तो फिर कभी मरें, कल्याण हो जायगा।

कलियुगमें दानकी भी महिमा है। अपनी शक्तिके अनुसार सभी दान कर सकते हैं।

××× ××× ××× ×××

एक परमात्मा हैं और एक उनकी शक्ति है। जैसे स्वयं परमात्माका अंश है और मन-बुद्धि-इन्द्रियाँ-शरीर उसकी शक्ति है। सांसारिक कार्यमें शक्ति काम आती है। भगवान् कहते हैं—'**मयाध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम्**' (गीता ९।१०) 'प्रकृति मेरी अध्यक्षतामें चराचरसहित सम्पूर्ण जगत्‌की रचना करती है।' उस शक्तिको परमात्मासे अलग भी नहीं कह सकते और अभिन्न भी नहीं कह सकते। जैसे, हमारी शक्ति कम-ज्यादा होती है, पर हम ज्यों-के-त्यों रहते हैं। हम शक्तिके बिना रह सकते हैं, पर शक्ति हमारे बिना नहीं रह सकती। इसलिये अपनी शक्तिको हम अपनेसे अलग करके नहीं दिखा सकते। शक्तिका स्वतन्त्र अस्तित्व सम्भव नहीं है।

सुषुप्तिमें 'मैं कुछ भी नहीं करता हूँ'—यह अनुभव सबको होता है। कारण कि सुषुप्तिमें अहम् अविद्यामें डूब जाता है। अज्ञानी और ज्ञानीकी सुषुप्तिमें भेद होता है। अज्ञानी तो गुणोंका

संग रहनेसे स्वयं अविद्यामें लीन होता है, पर ज्ञानी गुणातीत होनेसे स्वयं लीन नहीं होता।

'मैं हूँ'—इसमें 'हूँ' सत्ता है और 'मैं' एकदेशीय है, व्यक्तित्व है। अहम् इतना सूक्ष्म है कि जिसके साथ लगा दो, वैसा ही बन जाता है। ब्रह्मके साथ लगा दो तो '**अहं ब्रह्मास्मि**' (मैं ब्रह्म हूँ) हो जाता है। अहम्के कारण ही दार्शनिकोंमें मतभेद होता है। सब भेद अहम्के कारण हैं। अहम्के बाद स्वयं (चेतन तत्त्व) है। अहम् प्रकृतिका अंश है, स्वयं परमात्माका। सुषुप्तिमें अहम्के बिना आप रहते हैं, पर आपके बिना अहम् नहीं रहता। स्वयं आटा है और शरीर (जड़ता) रेती है। आटेमें रेती मिलाओगे तो वह रोटीके काम नहीं आयेगा।

××× ××× ××× ×××

भगवान्की बड़ी कृपा होती है, तब सत्संग मिलता है। अभी भयंकर कलियुग आ रहा है; अतः शीघ्र लाभ उठा लेना चाहिये। भोगेच्छाका ताण्डव नृत्य शुरू हो रहा है। गर्भपात-जैसे महापाप हो रहे हैं। ऐसे समयमें जो भगवान्की तरफ रुचि रखते हैं, वे बड़भागी हैं, दर्शन करनेयोग्य हैं। ऐसी रुचिवालोंका अब अकाल पड़ रहा है।

भगवान् अन्धे होकर कृपा करते हैं। देखकर कृपा करें तो मुश्किल हो जाय!

××× ××× ××× ×××

सत्संगमें आये हैं, फिर चले जायँगे—यही भाव घरमें रहते हुए भी रखें। यहाँसे जानेका समय तो निश्चित है, पर घरसे कब जाना पड़े, इसका कोई पता नहीं। यह मृत्युलोक

है। यहाँ हर समय मरना खुला है। हम यहाँ रहनेवाले नहीं हैं—इसकी हर समय जागृति रहे तो भोग और संग्रहकी रुचि मिट जायगी।

××× ××× ××× ×××

'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' (गीता २।४७) 'कर्तव्य-कर्म करनेमें ही तेरा अधिकार है, फलोंमें कभी नहीं'—यह कर्मयोगकी खास बात है। सामने जो कर्तव्य आ जाय, उसे तत्परतापूर्वक करें। फलेच्छाका त्याग करके कर्तव्य-कर्म करें। शास्त्रविहित कर्म करना है। न अनुकूलताके आनेकी इच्छा करें, न प्रतिकूलताके जानेकी। संक्षेपमें कहें तो 'करनेमें सावधान, होनेमें प्रसन्न'! जिससे किसीका अहित हो, वह कर्म कभी न करें।

सबका स्वरूप शुद्ध है। अन्तःकरण ही अशुद्ध होता है, स्वरूप कभी अशुद्ध होता ही नहीं। यदि स्वरूपमें अशुद्धि होती तो उसका कभी अभाव नहीं होता—**'नाभावो विद्यते सतः'**। स्वयं (स्वरूप) तीनों शरीरोंसे अलग है। स्वयंको सभी अवस्थाओंके भाव और अभाव दोनोंका अनुभव होता है। अतः स्वयं तीनों शरीरोंसे तथा उनकी अवस्थाओंसे सर्वथा अलग है। स्वयंके अभावका अनुभव कभी किसीको नहीं होता। अपना अभाव हो जाय—ऐसी मुक्ति कौन चाहेगा?

××× ××× ××× ×××

मनुष्यजीवन इसलिये मिला है कि दुःख सदाके लिये मिट जाय और महान् आनन्दकी प्राप्ति हो जाय। अतः हरदम सावधान रहें। सावधानी ही साधना है। असावधानी अर्थात् प्रमाद ही मृत्यु है— **'प्रमादं वै मृत्युः'** (महा० उद्योग० ४२।४)।

करनेलायक कामको न करना अक्रिय प्रमाद है। न करनेलायक कामको करना सक्रिय प्रमाद है। साधकका काम है—हरदम सावधान रहना। **विवेकी पुरुष जागता है। साधक सोता है। शेष सब मुर्दा हैं।** स्वरूपके प्रमादसे ही मृत्यु होती है। स्वरूपकी जागृति रहे तो कैसे मरेगा?

हृदयमें प्रेम रहे, बुद्धिमें विवेक रहे और शरीर उपकारमें लगा रहे।

××× ××× ××× ×××

न चेतनमें फर्क पड़ता है, न पदार्थोंमें, केवल स्वभावमें फर्क पड़ता है।

मूलमें भगवत्कृपासे सत्संग मिलता है। भगवान्‌की कृपामें विषमता नहीं है। जो उसके सम्मुख होता है, उसे विशेष लाभ होता है। ज्ञानीपर भी कृपा होती है, पर वह उधर कम देखता है। इसलिये भगवान्‌ने कहा है— ***'मोरें प्रौढ़ तनय सम ग्यानी'*** (मानस, अरण्य० ४३। ४)।

शरणागति सुगम भी है और सर्वोत्तम भी। **आजकल भक्तिके अधिकारी अधिक हैं। ज्ञानकी बातें करनेवाले तो बहुत हैं, पर अधिकारी कम हैं।** भोगासक्ति बढ़ रही है।

××× ××× ××× ×××

परमात्मा सब जगह परिपूर्ण हैं—ऐसा मान लें। जैसे हम सत्संगके लिये ही यहाँ आये हैं, ऐसे ही मान लें कि हम भगवान्‌के लिये ही संसारमें आये हैं। **परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण हैं, उनकी प्राप्तिके लिये ही हम यहाँ आये हैं, उनकी प्राप्तिके लिये ही बैठे हैं और उनके होकर ही रहना है—ये चार बातें मान लें।**

हम जहाँ भी रहें, भगवान्‌के होकर ही रहेंगे; जैसे—पत्नी सदा पतिकी होकर ही रहती है, चाहे पीहरमें क्यों न रहे। हमारा गोत्र 'अच्युतगोत्र' है।

××× ××× ××× ×××

वर्तमान समय बहुत भयंकर आया है। **मनुष्योंको पैदा न होने देना और पशुओंको मार देना—यह देशको नष्ट करनेका तरीका है।** अपने कल्याणमें तेजीसे लग जाना चाहिये। नामजप, कीर्तन, सत्संगमें लगे रहें। इससे धर्मका कुछ बचाव होगा।

××× ××× ××× ×××

भागवतमें आया है कि निर्वाहसे अधिक वस्तुको जो अपनी मानता है, वह चोर है*। निर्वाहसे अधिक चीज अपनी है ही नहीं। जितने-से निर्वाह हो जाय, उतनी ही चीज अपनी है। अधिक चीज दूसरोंकी है; अतः उसकी चोरीकी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। दूसरी बात, हमारा धन जो ले गया, वह उसीका था, हमारा नहीं था। परन्तु वह दण्डका भागी होगा ही। यहाँसे बच जायगा तो परलोकमें दण्ड मिलेगा। कारण कि चीज तो उसीकी थी, पर उसने अन्यायपूर्वक (चोरी करके) ली। बेईमानीसे लिया गया धन रहेगा नहीं, जायगा ही। संग्रह करना पाप नहीं है। संग्रहकी इच्छा, लोभ

---

* यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥

(श्रीमद्भा० ७।१४।८)

'मनुष्योंका अधिकार केवल उतने ही धनपर है, जितनेसे उनकी भूख मिट जाय। इससे अधिक सम्पत्तिको जो अपनी मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये।'

बाधक है। चोरीका धन मोरीमें जाता है। धन तो यहीं रह जायगा, पर पाप साथ चलेगा।

जो चीज वास्तवमें अपनी है, उसे कोई ले जा सकता ही नहीं— '**यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्**'। ईमानदार आदमीकी चीज कोई खा सकता ही नहीं। अगर चोरी गये धनकी चिन्ता हो तो उस धनको हृदयसे भगवान्के अर्पण कर दो। दान की हुई चीजका दु:ख नहीं होता। हमारा दु:ख मिट जाय, इसीके लिये सत्संग करते हैं। प्रारब्ध तो मिटेगा नहीं, पर दु:ख मिट जायगा। यह शरीर भी एक दिन चला जायगा, फिर धन जानेकी चिन्ता क्या करें!

मिली हुई वस्तुको अपना मानना बेईमानी है। दु:ख बेईमानीका होता है। बेईमानी छोड़ दो, वस्तुको अपना मत मानो तो दु:ख मिट जायगा।

बाहरकी परिस्थिति देखना सुख-दु:खकी कसौटी नहीं है। त्यागी सन्तके पास बाहरकी वस्तुएँ नहीं होतीं तो क्या वह दु:खी होता है? धनी व्यक्तिके पास लाखों-करोड़ों रुपये होते हैं, पर वह दु:खसे जलता रहता है। **आजकल धन पासमें होनेपर भी लोग सुखी नहीं हैं; क्योंकि बेईमानी आ गयी**। पहले लोग दूसरेके हककी कोई चीज नहीं लेते थे तो वे सुखी थे।

मनसे किसी भी वस्तुको अपना मत मानो। एक दिन वस्तु, साथी, सामान आदि सब छोड़ना पड़ेगा। अत: जो काम जरूरी हो, उसे पहले कर दो। जो जरूरी नहीं है, उसे छोड़ दो। सबसे सम्बन्ध छोड़कर जितनी देर बैठ सको, बैठ जाओ। **अन्तमें सबसे रहित होना है तो अभी सबसे रहित होकर चुप होकर बैठ जाओ**। फिर देखो विलक्षणता! अपने शरीरसे भी

सम्बन्ध मत मानो। वस्तु, व्यक्ति और काम-धंधा—तीनोंसे रहित होकर चुप हो जाओ।

××× ××× ××× ×××

संसारमें रचे-पचे लोग परमात्माको नहीं जान सकते, संसारको भी नहीं जान सकते। संसारसे अलग होकर ही संसारको जान सकते हैं। परमात्मासे अभिन्न होकर ही परमात्माको जान सकते हैं।

संसारसे अलग होनेसे वैराग्य होता है। वास्तवमें हम संसारसे अलग हैं और परमात्मासे अभिन्न हैं। शरीरके साथ सम्बन्ध मानते रहनेसे भक्ति तो हो सकती है, पर ज्ञान नहीं हो सकता। **ज्ञानमार्गमें विवेक और वैराग्य आवश्यक है, अन्यथा साधक बातें सीख जायगा।**

××× ××× ××× ×××

भगवान् और उनके भक्त बिना स्वार्थके सबका हित करनेवाले हैं। भगवान् इस रीतिसे देते हैं कि लेनेवालेको वह चीज अपनी ही मालूम देती है। भगवान्‌के दिये शरीरको मनुष्य 'मेरा' कहना दूर रहा, 'मैं' मान लेता है। सम्पूर्ण दोष, आसुरी-सम्पत्ति इस देहाभिमानसे ही आती है।

जबतक राग रहता है, तबतक शान्ति नहीं मिलती। जिसमें हमारा राग होता है, उसके हम पराधीन हो जाते हैं। **लेनेकी इच्छावाला दूसरोंका हित नहीं करता, प्रत्युत व्यापार करता है।** दूसरोंका हित चाहनेवालेमें भोग व संग्रहकी इच्छा नहीं होती। उसकी सब सम्पत्ति दूसरोंके हितके लिये होती है।

भगवत्प्राप्तिमें मनुष्यमात्र अधिकारी है। अनधिकारी वही है, जो भगवान्‌को नहीं चाहता।

बच्चा माँको किसी नामसे पुकारे, माँ तो उसको अपना बेटा ही मानती है और बच्चा उसको माँ ही मानता है। बच्चा माँको 'बाई' कहे तो माँ उसे भाई नहीं मानती! ऐसे ही भगवान्‌को किसी भी नामसे पुकार सकते हैं।

××× ××× ××× ×××

चित्तमें राग-द्वेष, हर्ष-शोक न होना समता है। मनचाही होनेमें प्रसन्नता न हो और मनचाही न होनेमें दुःख न हो। इस सुख-दुःखको समान करना है। **विषमता ही संसार है।** समता परमात्माका स्वरूप है। बाहरकी विषमता हमारेतक न पहुँचे। कोई गाली दे तो उसे ले नहीं—यह समता है। प्रकृतिकी सम-अवस्थामें प्रलय होता है और विषम-अवस्थामें सृष्टि होती है।

सुखी-दुःखी होनेवाला भोगी है और सम रहनेवाला योगी है। परिस्थिति आदिका ज्ञान होना दोषी नहीं है, प्रत्युत सुखी-दुःखी होना दोषी है। भोगी सदा सुखी नहीं रहता, पर समतावाला योगी सदा सुखी रहता है। **संसारको ठीक करना हाथकी बात नहीं है, पर अपनेको ठीक कर लो—यह हाथकी बात है।**

××× ××× ××× ×××

भगवान् दूर नहीं हैं। वे 'मैं हूँ' से भी नजदीक हैं! 'मैं' प्रकृतिका अंश है। 'मैं'को पकड़नेसे हम थोड़े-से दूर हैं। 'मैं'को छोड़ दें तो भगवान्‌के नजदीक हो जायँगे।

संसारके सम्बन्धसे कोई सुखी नहीं हो सकता। निर्मम-निरहंकार होनेसे ही शान्ति मिलेगी। **चाहे किसी मार्गसे चलो, कोई भी साधन करो, अहंता-ममता छोड़नी ही पड़ेगी।**

खेतीमें जैसा बीज बोयेंगे, वैसी ही खेती होगी। ऐसे ही

जैसी चीज दानमें देंगे, वैसा ही मिलेगा। इसलिये दान करना हो तो बढ़िया चीज दें। कर्मयोगमें दूसरेकी सेवाके लिये बढ़िया चीजका त्याग होगा। **कल्याण करना हो तो त्याग करना पड़ेगा।** त्यागसे तत्काल शान्ति मिलती है। संसारमें उसी व्यक्तिका ज्यादा आदर होता है, जिसमें त्याग होता है। **स्वार्थ और अभिमानका त्याग किये बिना मनुष्य ऊँचा नहीं बन सकता।**

परमार्थतत्त्व नहीं बिगड़ा है, स्वभाव बिगड़ा है। अपना स्वभाव शुद्ध बनाओ। बिगड़े स्वभाववाला किसीको भी नहीं सुहाता, माँको भी नहीं!

××× ××× ××× ×××

परमात्मप्राप्तिको गीताने बहुत सुगम बताया है। खास बाधा यह है कि हम चाहते नहीं। हमें केवल परमात्मप्राप्ति अभीष्ट नहीं है। भविष्य संसारके लिये होता है, भगवान्‌के लिये नहीं। कहीं जानेसे, कुछ करनेसे परमात्मप्राप्ति नहीं होती। परमात्मा नित्यप्राप्त हैं। परन्तु हम परमात्माकी आवश्यकता नहीं मानते। **'सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा'** संसारमें लगाना है, पर लगा दिया परमात्मामें! परमात्मप्राप्तिमें असिद्धि है ही नहीं। उसके लिये लगन चाहिये। **परमात्मप्राप्तिपर हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।**

××× ××× ××× ×××

अभी बड़ा भयंकर कलियुग आ रहा है। **भगवन्नामका जप और कीर्तन कलियुगसे रक्षा करनेवाले हैं।** जप और कीर्तनकी बड़ी महिमा है। दिनभर नामजप करते रहें। भगवच्चर्चा करते रहें। भगवच्चरणोंके शरण हो जायँ। बार-बार प्रार्थना करते रहें कि हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं। **कोई आफत आ जाय तो**

दस-पन्द्रह मिनट बैठकर नामजप करो और प्रार्थना करो तो रक्षा हो जायगी। सच्चे हृदयसे की गयी प्रार्थनासे तत्काल लाभ होता है। जो भी चाहिये, भगवान्‌को पुकारो।

×××　　　　×××　　　　×××　　　　×××

अपने अनुभवका आदर करें तो कल्याण हो जायगा। शरीर बदल रहा है—यह अपना अनुभव है। शरीर जी नहीं रहा है, प्रत्युत मर रहा है। जितने दिन जी गये, उतने दिन वास्तवमें मर गये, उतने दिन उम्र कम हो गयी। जब जन्मे थे, तब तो मौत दूर थी। अब मौत प्रतिक्षण नजदीक आ रही है। जिसको कोई भी नहीं चाहता, उस मौतकी तरफ हम निरन्तर जा रहे हैं। पर इच्छा यह करते हैं कि हम जीते रहें! जैसे पशुओंके विनाशको 'मांस-उत्पादन' कहते हैं, ऐसे ही हम मर रहे हैं—इसको जीना कहते हैं! **हम जी रहे हैं—यह असत्‌का संग है।** जो सच्ची बात है, उसको मानना सत्संग है।

बुरे स्वभाववाला मनुष्य जिस योनिमें जायगा, वहीं दुःख पायेगा। मरनेपर स्वभाव साथमें जाता है।

×××　　　　×××　　　　×××　　　　×××

मानवशरीर बहुत दुर्लभ है; परन्तु जो चीज मिल जाती है, उसका महत्त्व समझमें नहीं आता। **मिली हुई चीजका आदर नहीं करते, पीछे रोते हैं!** अगर पहलेसे ही चेत कर लें तो कितना लाभ हो जाय। रुपये तो पैदा हो सकते हैं, पर समय पैदा नहीं होता, यह तो खर्च ही होता है।

भयंकर कलियुगसे बचनेका उपाय है—नामजप। ***'राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल'*** (मानस, बाल० २७)।

कलियुगसे अपनी रक्षा करें। रात-दिन नामजपमें लग जाओ। भगवन्नामके सिवाय कलियुगसे कोई रक्षा करनेवाला नहीं है।

बिगाड़ करना ही हो तो कम-से-कम उतना बिगाड़ करो, जिसका पीछे सुधार कर सको।

××× ××× ××× ×××

हरेकको अपनी निन्दा बुरी लगती है, प्रशंसा अच्छी। विचार करें, निन्दा करनेवाला दूसरा है, उसपर हमारा वश चलता नहीं, उसे रोक सकते नहीं। उससे द्वेष करनेमें, उसे बुरा समझनेमें हमारा लाभ नहीं है। निन्दा करनेवाला हमारे पापोंका नाश करता है।

जो किसीको दुःख नहीं देता, उसके द्वारा दूसरोंकी सेवा शुरू हो गयी। जो किसीको दुःख नहीं देता, उसको देखनेसे पुण्य होता है—

तन कर मन कर वचन कर, देत न काहू दुक्ख।
तुलसी पातक हरत है, देखत उनको मुक्ख॥

अन्न, जल और वस्त्र देनेमें सुपात्र-कुपात्रका विचार करोगे तो खुद कुपात्र बन जाओगे। पापीको उतना अन्न दो, जिससे वह जी जाय। धन, कन्या आदि देनेमें सुपात्र देखना चाहिये।

××× ××× ××× ×××

भगवान्‌से उत्पन्न होनेके कारण सम्पूर्ण संसार भगवत्स्वरूप है— **'वासुदेवः सर्वम्'। मैं वही बात कहता हूँ जो श्रुति, युक्ति और अनुभवसे सिद्ध हो।** युक्ति देकर बात कहना मेरे स्वभावमें है।

परमात्माको सुनते हैं, संसारको देखते हैं। किसी-किसीको परमात्माके दर्शन, अनुभव भी हो जाता है! परमात्मामें कभी

परिवर्तन हुआ हो—ऐसा हमने नहीं सुना। संसारको देखते हैं, पर वह निरन्तर बदलता ही रहता है। संसार इतनी तेजीसे बदलता है कि उसे दो बार नहीं देख सकते।

जीव 'अमल' है, मल इसने स्वीकार किया है। जीव 'सहज सुखराशि' है, दु:ख इसने स्वीकार किया है। जो बदलता है, उसे अस्वीकार करना हमारा काम है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ संसारके पाँच गवाह हैं। पाँचों अलग-अलग बात बताते हैं। आपसमें इनकी बात नहीं मिलती, फिर इनका क्या भरोसा? 'है'-पना परमात्मामें है, संसारमें नहीं। हम रहनेवालेसे मोह न करके जानेवालेसे मोह करते हैं—यही बन्धन है। सच्चाईको पकड़ो, झूठको मत पकड़ो। सच्ची चीज कभी बदलती नहीं।

रोटी, कपड़ा और मकान बाकी रहते हैं, हम पहले मरते हैं, और चिन्ता करते हैं निर्वाहकी! आश्चर्यकी बात है।

××× ××× ××× ×××

साधकको हरदम सावधान रहना चाहिये। सावधानी ही साधना है। सावधानी ही जागृति है, असावधानी ही निद्रा है। स्वरूप सत्तामात्र है। अहम् संसारका मूल है। अहम् न हो तो 'है' रहेगा। 'मैं' और 'हूँ' मिलनेका नाम बन्धन है। 'मैं' प्रकृति है और 'हूँ' सत्ता है। जैसे ब्राह्मण निरन्तर ब्राह्मणपनेमें स्थित रहता है, ऐसे ही निरन्तर 'है'में स्थित रहें। परमात्मा 'है'। उस 'है'के अन्तर्गत अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, पर वह 'है' ज्यों-का-त्यों है।

××× ××× ××× ×××

अनेक योनियाँ हैं। उन सबमें मनुष्ययोनि विलक्षण है।

मनुष्यजीवन ब्रह्मचर्याश्रम है, जहाँ ब्रह्मविद्या सीखी जाती है। ब्रह्मविद्याको जाननेके बाद फिर कुछ भी करना, जानना और पाना बाकी नहीं रहता। **करने, जानने और माननेकी शक्ति परमात्माकी तरफ लग जाय तो इनका नाम 'योग' हो जाता है; जैसे—कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग।** परमात्माको मानना होता है और स्वरूपको जानना होता है। संसारको माननेवालेके लिये कर्मयोग है। करनेकी शक्तिका उपयोग सेवा है। 'करना' दूसरोंके लिये और 'जानना' अपने लिये है। अपने लिये करना राक्षसोंका काम है।

मनुष्यशरीरमें आकर अपना स्वभाव शुद्ध बनाना है—यह खास बात है। स्वभाव शुद्ध होते ही तत्त्वज्ञान हो जायगा। **अन्तःकरणकी शुद्धिकी पहचान है—नाशवान्‌में आकर्षण नहीं रहे।** जबतक संसारसे अलग नहीं होंगे, तबतक संसारका ज्ञान नहीं होगा, संसारके दोष नहीं दीखेंगे।

× × ×   × × ×   × × ×   × × ×

भगवान्‌ने केवल कल्याणके लिये मनुष्यशरीर दिया है। इसकी प्राप्तिके लिये तत्परतासे लग जाना चाहिये। संसारका काम तो चलता रहेगा, रुकेगा नहीं। विशेष चेत करना चाहिये। **परमात्मप्राप्ति वर्तमानका विषय है। इसमें समयका व्यवधान नहीं है।** जैसे अन्न, जल, औषध खुदको ही लेना पड़ता है, ऐसे ही कल्याण भी खुदको करना है। भगवत्प्राप्तिकी लगन लग जाय—

'नारायन' हरि लगनमें, यह पाँचों न सुहात।
बिषय-भोग, निद्रा, हँसी, जगत-प्रीति बहुबात॥

भगवान् संसारके दु:खकी परवाह नहीं करते, पर अपने कल्याणका दु:ख नहीं सह सकते।

साधनमें लगनेसे दोष स्वत: कम होते हैं। दोष कम नहीं हुए तो अभी साधनमें लगा ही नहीं!

××× ××× ××× ×××

हम यहाँ सत्संग कहने-सुननेके लिये इकट्ठे हुए हैं, स्थायी रहनेके लिये नहीं। ऐसे ही हम सब आये हुए हैं और जानेवाले हैं। कोई जन्मकर आया है, कोई विवाह करके। हम तत्त्वप्राप्तिके लिये आये हैं। सदाके लिये दु:खोंसे छूटनेके लिये आये हैं। यह स्थिति हम जीवित रहते-रहते प्राप्त कर सकते हैं। इस जन्ममें तत्त्वको प्राप्त नहीं करेंगे तो किस जन्ममें करेंगे? तत्त्वप्राप्तिसे कभी निराश नहीं होना चाहिये।

जैसे साइकिल आगे ही चलती है, उलटी नहीं चलती, ऐसे सुदुराचारी भी भगवान्‌में लग जाय तो उसका उद्धार ही होता है, पतन नहीं होता।

संसारकी प्राप्ति संसारकी आशाके अधीन नहीं है। आशा मत करो। आशा ही दु:ख देनेवाली है। सबको छुट्टी दे दो तो आपको छुट्टी मिल जायगी। सेवा कर दो, पर आशा मत रखो। बाहरसे मत कहो कि 'मैं सेवा नहीं चाहता', पर भीतरसे आशा मत रखो। **लेना दोष नहीं है, आशा रखना दोष है।** दूसरा मेरा कहना माने—यह अपने हाथकी बात नहीं। जो अपने हाथकी बात नहीं, उसकी आशा क्यों रखें?

××× ××× ××× ×××

सदा सत्यभाषण करें। सत्य बोलनेसे शान्ति मिलती है।

सत्यभाषणसे परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति हो जाय। असत्‌की सत्ता नहीं है—'**नासतो विद्यते भावः**'। असत् प्राप्त हो तो भी अप्राप्त ही है। आपने बालकपना छोड़ा नहीं, पर वह छूट गया। शरीर नित्य-निरन्तर छूटता चला जा रहा है। मौत निरन्तर नजदीक आ रही है। जिसका नाश होता है, वह असत् होता है। जैसे एक-एक कदममें रास्ता कटता है, ऐसे ही एक-एक श्वासमें उम्र कट रही है। श्वास पूरे होनेपर उसी क्षण जाना पड़ेगा। उस समय यह बुद्धिमानी, चतुराई, बल कुछ काम नहीं आयेगा।

जानेवाला विभाग (शरीर-संसार) अलग है, रहनेवाला विभाग अलग है। **जो जा रहा है, उसका नाम असत्य है और जो रह रहा है, उसका नाम सत्य है।** सत्यभाषणसे सत्यकी प्राप्ति होती है।

धन मेरा है—यह भेदभावका सम्बन्ध है। मैं धनी हूँ—यह अभेदभावका सम्बन्ध है। जिससे सम्बन्ध नहीं है वही छूटता है। जो अलग नहीं होता वह नहीं छूटता। 'मैं हूँ' से हमने अभेदभावका सम्बन्ध माना है। 'मैं' 'हूँ' से अलग है—यह मार्मिक बात है। 'मैं' प्रकृतिका अंश है और 'हूँ' परमात्माका अंश है। 'मैं'-पन छूटनेके बाद 'है'-पना ही रहेगा। **'मैं' से अपनेको अलग अनुभव करना तत्त्वज्ञान है। 'मैं' से अपनेको एक अनुभव करना अज्ञान है।**

सत्यकी प्राप्तिके लिये सत्यभाषणकी बड़ी आवश्यकता है।

××× ××× ××× ×××

विषमता स्वरूपमें नहीं आयी है, मनमें ही आयी है।

इसलिये गीतामें आया है— '**इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः**' (५।१९) 'जिनका अन्तःकरण समतामें स्थित है, उन्होंने इस जीवित-अवस्थामें ही सम्पूर्ण संसारको जीत लिया है।' संसारकी निवृत्ति स्वतःसिद्ध है, परमात्माकी प्राप्ति स्वतःसिद्ध है। हम सबके भाव और अभावको जानते हैं, पर अभावको नहीं जानते। जिसके भाव-अभावका अनुभव होता है, उसीसे असंग होना है और जिसके अभावका कभी अनुभव नहीं होता, उसीमें स्थित रहना है। जिसका अभाव होता है, वह विषम है। संसार विषम है। विषमताका त्याग करके समतामें स्थित होना तत्त्वज्ञान है।

संसार अबतक किसीको भी प्राप्त नहीं हुआ, न होगा। संसार किसीके साथ कभी रहा नहीं, रह सकता नहीं। परमात्मा हमारेसे कभी दूर हो सकते ही नहीं।

स्त्री ईश्वरकृत सृष्टि है, माँ, बहन, भौजाई आदि जीवकृत सृष्टि है। जीवकृत सृष्टिमें ही पक्षपात, राग-द्वेष, बन्धमोक्ष आदि होते हैं। 'मेरा' और 'तेरा' जीवका बनाया हुआ है। ईश्वरकी बनायी चीज तो प्रत्यक्ष दीखती है कि यह स्त्री-पुरुष, स्थावर-जंगम, जड़-चेतन आदि हैं। **सबसे सम्बन्ध न तोड़े, न जोड़े, प्रत्युत हाथ जोड़े—यह साधन है।** अपनी बनाई हुई सृष्टिका त्याग कर दोगे तो मुक्त हो जाओगे।

××× ××× ××× ×××

'मैं हूँ' का अनुभव सबको है, पशु-पक्षियोंको भी। ये दो विभाग हैं—'मैं' प्रकृतिका और 'हूँ' परमात्माका अंश है। 'मैं हूँ' में 'मैं' (शरीर) की प्रधानता है। मैंपन संसारका

बीज है। इसीसे सब संसार पैदा हुआ है—**'ययेदं धार्यते जगत्'** (गीता ७।५)। प्रकृतिका अंश तो प्रकृतिके साथ ही रहता है, पर परमात्माका अंश परमात्माके साथ न रहकर प्रकृतिके अंशको पकड़ता है—**'मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति'** (गीता १५।७)।

अहम्‌को पकड़नेसे परमात्माके साथ भेद हुआ है। अतः शरीरको मैं-मेरा न मानकर भगवान्‌को मेरा मान ले, संसारसे विमुख होकर भगवान्‌के सम्मुख हो जाय तो निहाल हो जाय! **जिसने अहम्‌को पकड़ा है, उसीका जन्म-मरण होता है।**

××× ××× ××× ×××

अभ्याससे साध्यकी प्राप्ति होगी, उसमें समय लगेगा—यह मान्यता बाधा देनेवाली है। मूलमें कर्तृत्व नहीं है। यह हमारी मान्यता है—**'कर्ताहमिति मन्यते'** (गीता ३।२७)। अपनेमें कर्तृत्व नहीं है, यदि होता तो कभी मिटता नहीं। सब कार्य प्रकृतिके द्वारा हो रहा है। जो अपनेको कर्ता मान लेता है, वह बँध जाता है। अतः कर्तृत्वको मिटाना नहीं है, प्रत्युत अपनेमें स्वीकार नहीं करना है। जो है नहीं, उसे मिटाना ही गलती है।

तत्त्वप्राप्तिके लिये मैं बहुत सुगम-से-सुगम बात बता दूँगा। परन्तु तोता-रटन मुझे पसन्द नहीं। इसलिये लोग कहते हैं कि स्वामीजी पढ़े-लिखे नहीं हैं। मेरी शैली दूसरी है। तोते-जैसे ग्रन्थोंकी बात कहना मुझे पसन्द नहीं।

मिटानेसे अहम् दृढ़ होता है। मैं कर्ता नहीं हूँ—इसमें 'मैं' भी गया और 'कर्ता' भी गया। कूड़ेके साथ झाड़ू भी फेंक दो।

खास बात है—तत्त्व नित्यप्राप्त है, केवल उधर लक्ष्य करना है। उसके लिये उद्योग नहीं करना है। हम सब कल्पवृक्षके नीचे हैं। कोई कहे कि राम-राम करनेसे कुछ नहीं होगा तो कुछ नहीं होगा! सब कुछ होगा तो सब कुछ हो जायगा!

'है'-पना भगवान्‌में ही है। सब वस्तुएँ, प्राणी अलग-अलग हैं, पर 'है' सबमें एक है। वह 'है' परमात्मा है। सबका अभाव होता है, पर 'है' ज्यों-का-त्यों रहता है। वह 'है' ही हमारा है। हम उसे इन्द्रियोंसे नहीं पकड़ सकते, पर वह हमारी इन्द्रियोंमें आ सकता है। परमात्मा शुद्ध-अशुद्ध, सुगन्ध-दुर्गन्ध, अमृत-मृत्यु, सत्-असत् सबमें है।

××× ××× ××× ×××

करनेमें सावधान रहो, होनेमें प्रसन्न रहो। प्रत्येक कार्य करनेमें सावधानी रखो, फलकी चिन्ता मत करो। छोटे-छोटे कार्यमें भी सावधानी रखो—'**सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम्**' (हितोपदेश, मित्र० २२) 'खूब सोचकर कही हुई बात और भलीभाँति विचारकर किया हुआ काम बहुत दिनोंतक नहीं बिगड़ता।' आदत सुधर जायगी तो सब काम सुधर जायगा। आदत बिगड़ जायगी तो फिर उसको सुधारना बड़ा कठिन है। व्यसन जल्दी छूटता नहीं। अतः आदतका सुधार करो। आज लोग अपना अधिकार तो मानते हैं, पर अपने कर्तव्यका पालन नहीं करते। अधिकार तो कर्तव्यका दास है। अच्छे स्वभाववाला सबको सुहाता है। बुरे स्वभाववाला घरवालोंको भी नहीं सुहाता।

साधु तो मनुष्य अपने मनसे बनता है, पर विधवा भगवान्‌की

इच्छासे बनती है। विधवा अपने धर्मका ठीक पालन करे तो वह नैष्ठिक ब्रह्मचारीकी गतिको प्राप्त होती है, भले ही पहले उसकी पाँच-सात सन्तानें हो गयी हों!

सत्संगसे जितना ज्ञान-प्रकाश मिलता है, उतना शास्त्रोंसे नहीं मिलता।

××× ××× ××× ×××

अपनेमें कर्तापन नहीं है—यह ऊँची बात नहीं है, प्रत्युत अपनी बात है। अपनी बात क्या ऊँची और क्या नीची! वास्तवमें स्वरूप अहम्‌से रहित है। अहम् माना हुआ है। इसका अनुभव कैसे हो? सुषुप्तिमें मन-बुद्धि-इन्द्रियाँ तथा अहम् भी नहीं रहता। जागनेपर हम कहते हैं कि मेरेको कुछ भी पता नहीं था—यह सुषुप्तिकी स्मृति है। हमें अहम्‌के अभावका ज्ञान था। अतः स्वरूप अहम्‌से रहित है। स्वयंको अहम्‌के भाव और अभाव दोनोंका ज्ञान है। सत्ता अहंरहित है—इस बातको आदर दें। अहम् अपरा (जड़) प्रकृति है।

मैं साथी और सामानसे रहित हूँ—ऐसा अनुभव करें। इससे अहंरहित स्वरूपका अनुभव हो जायगा। न चिन्तन करे, न निश्चय करे। कारण कि चिन्तन करनेसे मन आ जायगा, निश्चय करनेसे बुद्धि आ जायगी। मैं साथी और सामानसे रहित हूँ—यह अभ्यास नहीं है। बार-बार वृत्ति लगानेका नाम अभ्यास है। अतः विचार, चिन्तन नहीं करना है, अनुभव करना है। सुषुप्तिकी तरह जाग्रत्‌में भी अहंरहित अनुभव करें। 'है' ही अपना स्वरूप है।

××× ××× ××× ×××

नित्य वस्तुकी प्राप्तिमें समय नहीं लगता। उसमें हम स्वयं ही आड़ लगाते हैं। कल्पवृक्षके नीचे जैसी कल्पना करें, वैसा ही हो जाता है। **परमात्मप्राप्ति वर्तमानकी वस्तु है, भविष्यकी नहीं।** जो मौजूद है, जिसे बनाना नहीं, कहींसे लाना नहीं, उसकी प्राप्तिमें भविष्य कैसा?

आप अपनेको सबसे नजदीक मानते हैं कि नजदीक-से-नजदीक मैं हूँ। पर आपसे भी नजदीक परमात्मा हैं। परमात्मा जीवको भी प्रकाशित करनेवाला परम प्रकाशक है। वे सम्पूर्ण विषयोंको, इन्द्रियोंको, जीवोंको प्रकाशित करनेवाले हैं—

बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

(मानस, बाल० ११७। ३)

भगवान् सब जगह पूरे-के-पूरे हैं—

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

(गीता १३। १३)

'वे परमात्मा सब जगह हाथों और पैरोंवाले, सब जगह नेत्रों, सिरों और मुखोंवाले तथा सब जगह कानोंवाले हैं। वे संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित हैं।'

सोनेके पासेमें कौन-सा गहना नहीं है? स्याहीमें कौन-सी लिपि नहीं है?

वाल्मीकिजीने रामायण अर्थात् भगवान् श्रीरामका स्थान (अयन) बताया, इसीलिये भगवान्‌ने उनसे अपने रहनेका स्थान

पूछा। स्थान बतानेवालेसे ही स्थान पूछा जाता है। वाल्मीकिजीने भगवान्‌को बताया कि आप सब जगह रहते हैं, विशेषरूपसे भक्तोंके हृदयमें रहते हैं, अभी आप चित्रकूटमें रहें।

भगवान्‌से रहित कोई खाली जगह है ही नहीं। उनकी प्राप्तिमें देरी आपके कारण हो रही है। **ऐसा करेंगे, तब प्राप्ति होगी—यह देरी है।** संसार कभी किसीको मिला नहीं। बदलनेवाली चीजसे न बदलनेवालेकी आड़ कैसे लग जायगी? **जबतक अनन्यता नहीं होगी, तबतक सर्वत्र विद्यमान होते हुए भी परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी।** नाशवान्‌की इच्छा ही बाधक है।

समझने, सीखनेमें वह चीज आती है, जो बुद्धिका विषय हो। जो बुद्धिका विषय नहीं है, उसमें बुद्धि लगाना व्याघात दोष है।

××× ××× ××× ×××

अगर अहम्‌पर विजय पा लें तो आप जीवन्मुक्त, तत्त्वज्ञ, प्रेमी, योगी सब हो जायँगे। अहम्‌से रहित होनेके लिये पहले दो बातें खास समझनेकी हैं—(१) भगवान् गीतामें कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनों ही योगोंमें निर्मम-निरहंकार होनेकी बात कहते हैं। संसारमात्रको जीवने धारण कर रखा है। अतः हम अहम्‌से रहित हैं—ऐसा अनुभव हो जाय, और (२) भगवान् निर्मम-निरहंकार होनेके लिये कहते हैं; अतः हम निर्मम-निरहंकार हो सकते हैं। जो हम नहीं हो सकते, वह भगवान् नहीं कहेंगे।

अनुभव करें कि हम अहंकार-रहित हैं। इसके लिये

सुषुप्तिका उदाहरण अच्छा है। सुषुप्तिमें अहम् अविद्यामें लीन होता है, आप स्वयं अविद्यामें लीन नहीं होते। कारण कि प्रकृतिका अधिकार अहम्पर है। जो चीज कभी होती है, कभी नहीं होती, वह कभी नहीं होती—यह नियम है। जो किंचित् समय भी नहीं है, वह सदाके लिये नहीं है।

××× ××× ××× ×××

वेदव्यासजी महाराजने जो बात नहीं लिखी हो, वह कोई कह दे या लिख दे—ऐसा मेरा विश्वास नहीं है। उनकी वाणीमें कहीं-न-कहीं वह बात मिल जायगी।

परमात्मा ही सबके प्रत्यक्ष हैं। संसार प्रत्यक्ष हो सकता ही नहीं। सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय हमारी दृष्टिमें है। वास्तवमें भगवान् ही उत्पन्न करते और उत्पन्न होते हैं, रक्षा करते और रक्षित होते हैं, संहार करते और संहार होते हैं*। **भगवान्में छिपनेकी ताकत नहीं है। वे कहाँ छिपें? किससे छिपें? किसके लिये छिपें?** उनकी प्राप्तिमें कोई आड़ है ही नहीं। उनकी प्राप्तिसे निराश होना बड़ी भारी गलती है। आप आँखें बन्द करके कहते हैं कि हमें कुछ नहीं दीखता!

योग सदाके लिये हो सकता है, पर भोग सदाके लिये मनुष्य नहीं भोग सकता।

भगवान्की माया मनुष्यको नहीं फँसाती। **भगवान्की मायाको अपना मान लिया, तभी फँसता है। यदि भगवान्की मानता तो नहीं फँसता।**

××× ××× ××× ×××

* आत्मैव तदिदं विश्वं सृज्यते सृजति प्रभुः।
त्रायते त्राति विश्वात्मा ह्रियते हरतीश्वरः॥
(श्रीमद्भा० ११। २८। ६)

मोह नष्ट होनेमें सन्तकृपा या भगवत्कृपा काम करती है, अपनी पण्डिताई नहीं—'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत' (गीता १८। ७३)। कृपासे जो काम होता है, वह अपने पुरुषार्थ (साधन)-से नहीं होता। कृपासे जो शक्ति मिलती है, वह अपनी बुद्धिमानीसे नहीं। जैसे धोबी ज्यादा मैले कपड़ेको साफ करनेमें प्रसन्न होता है, ऐसे ही गुरुजन ज्यादा मैले व्यक्तिको शुद्ध बनाकर बड़े प्रसन्न होते हैं। ***'आछी करे सो रामजी कै सद्गुरु कै सन्त'।*** अतः कृपाका आश्रय लो।

अनुकूल-प्रतिकूल सब भगवान्‌का प्रसाद है। प्रसादमें रसगुल्ला भी होता है और करेला भी। भजन-ध्यान आदि सब कुछ करो, पर आश्रय कृपाका रखो।

××× ××× ××× ×××

कर्मयोग भौतिक साधना है। भौतिक वस्तुओंसे सबकी सेवा करना है और बदलेमें कुछ भी नहीं चाहना है। सबको छोड़कर अपने स्वरूपमें स्थित होना आध्यात्मिक साधना (ज्ञानयोग) है। अपने-आपको भगवान्‌के समर्पित कर देना आस्तिक साधना (भक्तियोग) है। लेनेकी इच्छा करना बन्धन है। तीनोंमें सबसे सुगम साधन भक्ति है। वस्तुओंको भी भगवान्‌के समर्पित कर दे और स्वयंको भी। वास्तवमें सब कुछ है ही भगवान्। भक्ति ज्ञानके अधीन नहीं है। ज्ञान और वैराग्य भक्तिके बेटे हैं। भक्ति उनकी माँ है। ***'भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी'*** (मानस, उत्तर० ४५। ३)। इसका तात्पर्य ज्ञानको छोटा बतानेमें नहीं है, प्रत्युत यह बतानेमें है कि

भक्ति करनेसे ज्ञान भी आ जायगा (गीता १०।१०-११), *'अनइच्छित आवइ बरिआईं'* (मानस, उत्तर० ११९।२)।

कुछ-न-कुछ चाहनेसे ही अशान्ति आती है। कुछ भी चाहना न हो तो अशान्ति आ ही नहीं सकती।

जिसके न होनेका दुःख हो, वह होने लग जायगा—यह सिद्धान्त है। भक्ति न होनेका दुःख हो जाय तो भक्ति हो जायगी। ऐसे ही जिसके होनेका दुःख हो जाय, वह मिट जायगा।

××× ××× ××× ×××

जो करना चाहिये, वह धर्म होता है। जो नहीं करना चाहिये, वह अधर्म होता है। आज अधर्मकी उन्नति हो रही है।

एक नंबरका काम भगवान्‌को याद करना है, दो नंबरका काम पुण्यकर्म करना है। जो भोगोंमें लगे हुए हैं, वे श्वास लेते हुए भी मुर्दा हैं! शुद्ध-अशुद्ध सभी अवस्थाओंमें भगवान्‌का नाम लेना चाहिये।

मनकी स्थिरता होगी तो सिद्धियोंकी प्राप्ति होगी, परमात्मा की नहीं। अतः बुद्धिकी स्थिरता होनी चाहिये।

श्रोता—घरका काम करते समय भगवान्‌को भूल जाते हैं, क्या करें?

स्वामीजी—यह निश्चय कर लो कि आजसे अपने घरका काम करना ही नहीं है, प्रत्युत केवल भगवान्‌के घरका काम करना है।

××× ××× ××× ×××

यह बात हर समय जाग्रत् रहनी चाहिये कि शरीर स्वतः जा रहा है। शरीर जी रहा है या मर रहा है—इसमें आपको कौन-सी बात सच्ची दीखती है? शरीर निरन्तर जा रहा है—यह बात मनुष्यमात्रकी है, किसी एक सम्प्रदाय, जातिकी नहीं है। यह बात स्वाभाविक रहनी चाहिये। जो बात निःसन्देह है, उसे मान लेना हमारा खास काम है। सच्ची बातको जाननेका नाम ज्ञान है।

××× ××× ××× ×××

मनुष्य बालकपनसे ही भगवान्‌के मार्गमें लग जाय तो महात्मा बन सकता है। गीता ज्ञानका अथाह समुद्र है, जिसका कोई पार नहीं पा सकता। रामायण और गीता बड़े विलक्षण ग्रन्थ हैं। दूसरोंके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये—यह रामायणमें बताया गया है।

सुखकी आसक्तिके कारण जड़ और चेतन—ये दो विभाग दीखते हैं, अन्यथा सब साक्षात् परमात्माका स्वरूप है। **विवेकसे उतनी उन्नति नहीं होती, जितनी विश्वाससे होती है।** जबतक एक चेतन-तत्त्वके सिवाय कल्पनासे भी अन्य (जड़)-की सत्ता रहती है, तबतक तत्त्वकी प्राप्ति नहीं होती।

साधकके लिये भोग और संग्रहकी आसक्ति बहुत ही घातक है। **जड़ता बुद्धिमें रहती है। बोध होनेपर जड़ता नहीं रहती।**

××× ××× ××× ×××

शरीर भी अपना नहीं है। मिलने और बिछुड़नेवाली वस्तुको अपना मानना खास भूल है। भगवान् आपको कभी नहीं छोड़ते।

वे ही अपने हैं। **भगवान्‌को अपना कहनेवाला केवल मनुष्य ही है, और कोई नहीं।** मनुष्य ही भगवान्‌को अपना कह सकता है। मनुष्यकी आफत, दुःख मिटानेके लिये भगवान्‌के मनमें एक भूख है, लालसा है कि यह मुझे अपना कहे! सच्चे हृदयसे कह दे कि 'हे नाथ! मैं आपका हूँ' तो भगवान् खुश हो जाते हैं!

××× ××× ××× ×××

संसार निरन्तर जा रहा है, इसमें जो 'है' दीखता है, वह परमात्माका है। संसार विद्यमान नहीं है। परमात्मा विद्यमान हैं। शरीर निरन्तर 'नहीं' में जा रहा है। परमात्मा निरन्तर रहते हैं। हमारी स्थिति केवल उस रहनेवालेमें ही है। 'है' नाम परमात्माका ही है। **जैसे मूर्तिमें भगवान्‌का पूजन करते हैं, ऐसे ही संसारमें परमात्माका पूजन करना है।** कुत्ता रोटी खा रहा है तो भगवान्‌को ही भोग लग रहा है! भगवान् ही सबके भोक्ता हैं।

विश्वासमें विवेककी जरूरत नहीं है। यदि विवेक लगायेंगे तो शालग्राम पत्थर दीखेगा! विश्वासमें विवेककी सहायता नहीं है, प्रत्युत विवेकका विरोध नहीं है।

सेवा करनेवालेके लिये संसार भगवत्स्वरूप है, पर सुख लेनेवालेके लिये संसार दुःखरूप है।

शरीर गायका शुद्ध है, मनुष्यका नहीं। जिसके गोबर-गोमूत्र भी पवित्र है, वह स्वयं कितनी पवित्र होगी! परन्तु गायमें विवेक नहीं है। मनुष्यमें विवेक है। जैसे अक्षरको सीखनेके लिये आँखें हैं, ऐसे ही परमात्माको जाननेके लिये

मनुष्यशरीर (विवेक) है। मनुष्यशरीर नहीं रहेगा तो नहीं जान सकेंगे; क्योंकि जाननेकी सामग्री (विवेक) नहीं रहेगी। परमात्माको जान लिया तो फिर शरीरकी जरूरत नहीं है। असत्‌के द्वारा परमात्मप्राप्ति नहीं होती, प्रत्युत असत्‌के सदुपयोगसे परमात्मप्राप्ति होती है। बुद्धिसे तत्त्वको जानोगे तो प्राप्ति स्वयंको होगी, बुद्धिको नहीं। अक्षरको आँखसे समझ लो तो अक्षर साथ रहेगा, आँख साथ नहीं रहेगी। इसी तरह परमात्मा साथ रहेंगे, शरीर साथ नहीं रहेगा।

××× ××× ××× ×××

बड़े-से-बड़े परमात्मा हैं। उनमें अपार-अनन्त शक्ति है। सम्पूर्ण शक्तियाँ वहींसे आती हैं। जीवमात्रमें सहारा लेनेकी एक इच्छा है। किसीमें ज्यादा, किसीमें कम हो सकती है। मूलमें सहारा देनेवाले, सबकी रक्षा करनेवाले भगवान् ही हैं। उनसे कोई बात छिपी नहीं है। ऐसा होनेपर भी वे बड़े कृपालु हैं।

किसी भी आदमीको सर्वथा खराब नहीं मानना चाहिये। मनुष्य सर्वथा सद्‌गुणी तो हो सकता है, पर सर्वथा दुर्गुणी कोई नहीं हो सकता।

××× ××× ××× ×××

भगवान् सदाकी माँ हैं और उनमें अनन्त माताओंका स्नेह है। वे हरदम मात्र जीवोंपर कृपा कर रहे हैं। संसारमें कृपालु न्याय नहीं कर सकता और न्यायकारी कृपा नहीं कर सकता। परन्तु **भगवान्‌में न्याय और कृपा—दोनों पूरे-के-पूरे हैं।** वे कृपा करते ही रहते हैं। कृपा करना उनका स्वभाव है। वे

कृपाको जनाते ही नहीं। वे जिसको जो चीज देते हैं, वह चीज उसे अपनी ही मालूम देती है। भगवान्‌ने मनुष्यशरीर दिया, पर यह हमें अपना ही मालूम देता है। **भगवान्‌की कृपासे ही मुझे विलक्षण-विलक्षण बातें प्राप्त होती हैं, वे मेरी अपनी नहीं हैं।** अगर शरीर आपका है तो उसे बीमार क्यों होने देते हो? यदि देखनेकी शक्ति आपकी है तो चश्मा क्यों लगाते हो? ऐसा सत्संग-समारोह भी भगवान्‌की कृपाशक्तिसे ही होता है, व्यक्तियों, प्रबंधकों आदिकी शक्तिसे नहीं।

संतोंका संग प्रारब्धसे नहीं होता। प्रारब्धसे तो भोग मिलता है। सत्संग भगवान् और सन्तोंकी कृपासे ही मिलता है। खास कारण है—भगवान्‌की कृपा। शरीर, बल, योग्यता आदि सब भगवान्‌के दिये हुए हैं। भगवान्‌की दी हुई चीजको भगवान्‌के ही अर्पण कर दें तो भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं।

××× ××× ××× ×××

पांचभौतिक दृष्टिसे सब एक हैं। जीवकी दृष्टिसे सभी परमात्माके अंश हैं। परमात्माकी दृष्टिसे सभी परमात्मस्वरूप हैं। भेद अपने राग-द्वेषसे पैदा किया हुआ है। **व्यवहारका भेद कर्तव्यपालन करनेके लिये, सेवा करनेके लिये है।** अपने कर्तव्य-कर्मके द्वारा चारों वर्ण दूसरोंकी सेवा करें। सेवा करते समय सबमें एक परमात्माको देखें, जैसे मूर्तिमें भगवान्‌को देखते हैं।

जबतक संस्कार न हो, तबतक सभीको अपनेको शूद्र ही मानना चाहिये। सभी वर्णोंका आदर करना चाहिये। **वर्ण**

आदिको लेकर अपनेमें अभिमान नहीं करना चाहिये—यह खास बात है। जो अपनेको छोटा मानता है, वही वास्तवमें बड़ा होता है।

×××   ×××   ×××   ×××

कलियुगमें नामकी महिमा अधिक है। कारण कि जब किसी तरहकी कोई योग्यता नहीं होती, तब पुकार होती है। नामजप एक पुकार है। सब तरहसे अयोग्य बालक पुकारता है।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—यह पुकार है। 'हरे' कहनेमें यह भाव रखें कि संसार हरा गया है, जा रहा है और 'राम' व 'कृष्ण' कहनेमें यह भाव रखें कि भगवान् रह रहे हैं। संसार बह रहा है, भगवान् रह रहे हैं। संसार नहीं है, भगवान् हैं।

रुपयोंको लेकर करोड़पति अपनेको बड़ा मानता है। अगर करोड़ रुपये चले जायँ तो क्या रहा? खुदकी फजीती ही हुई! संसारकी वस्तुको अपना मानना बेईमानी है। ***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'***—यह ईमानदारी है।

×××   ×××   ×××   ×××

निर्गुणमें विवेक-विचार मुख्य है। सगुणमें श्रद्धा-विश्वास मुख्य है। **ज्ञानका पंथ कठिन है, पर भक्तिका पंथ सुगम है। निर्गुणका रूप सुलभ है, पर सगुणका रूप कठिन है।** इसलिये गोस्वामीजी महाराजने कहा है—

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।

(मानस, उत्तर० ७३ ख)

ग्यान पंथ कृपान कै धारा।

(मानस, उत्तर० ११९।१)

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा।

(मानस, उत्तर० ४६।१)

तर्क निर्गुणमें चलता है, सगुणमें नहीं। **विश्वासमें कमी होनेसे ही भक्तिमें कठिनता आती है।** निर्गुणका स्वरूप है—सत्तामात्र, होनापन।

मेरे विचारमें कोई भी मार्ग कठिन नहीं है। अपनी रुचि, विश्वास और योग्यता होनी चाहिये। मैं न रूपको कठिन मानता हूँ, न मार्गको कठिन मानता हूँ। आत्मा शुद्ध, बुद्ध, मुक्त है, अकर्ता है—ये कोरी बातें हैं। ये शास्त्रकी बातें हैं, साधनकी नहीं। बातोंसे कुछ होनेवाला नहीं है, कोरा अभिमान होगा।

विहित भोग भी बाधक है, फिर निषिद्ध भोग तो बहुत ही बाधक है। अत: ज्ञान या भक्ति जो भी चाहते हो, पाप करना छोड़ दो। उसमें भी सुगम बात यह है कि जिसको पाप जानते हो, वह छोड़ दो। सबसे पहले निषिद्ध कर्मोंका त्याग करो।

मदिरापानका पाप ब्रह्महत्यासे भी तेज है! मदिरापानमें हत्या नहीं दीखती, पर वह धर्म, आस्तिक भावके अंकुरोंको जला देता है।

××× ××× ××× ×××

मुख्य पाँच देवता ईश्वरकोटिके हैं—विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य और देवी। इनको माननेवाले भी पाँच सम्प्रदाय हैं—

वैष्णव, शैव, गाणपत्य, सौर और शाक्त। मुख्य देवताका मन्दिर मध्यमें होगा तो शेष चारों दिशाओंमें चार देवताओंके मन्दिर होंगे; जैसे—

गणेशजी बालरूप हैं। इसलिये वे मोदकप्रिय हैं। वे बुद्धिके अधिष्ठाता हैं। विद्यार्थी विद्यारंभके समय गणेशजी और सरस्वतीका स्मरण करते हैं।

××× ××× ××× ×××

मूल्यवान् वस्तु सुगम होती है। संसारकी कोई भी चीज सबके लिये नहीं है, सब जगह नहीं है, सब समयमें नहीं

है। परन्तु परमात्मा सब देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति आदिमें हैं और सबके लिये हैं। जो किसीके लिये हो और किसीके लिये न हो, वह परमात्मा नहीं हो सकता। उसको प्राप्त करनेके अधिकार अलग-अलग हैं—**'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः'** (गीता १८। ४५)। वर्ण, आश्रम, श्रद्धा, विश्वास, योग्यताको लेकर सबका कर्तव्य अलग-अलग होता है। दो व्यक्तियोंमें भी समान रुचि नहीं होती—**'रुचीनां वैचित्र्यात्'**।

भगवान्‌की ओरसे सबको सुख पहुँचानेका अधिकार दिया हुआ है, पर मारनेका अधिकार किसीको नहीं दिया है।

छोटा प्यारका पात्र होता है, तिरस्कारका नहीं। जैसे घड़ीका प्रत्येक पुर्जा अपनी-अपनी जगह ही ठीक रहता है, ऐसे ही प्रत्येक वर्ण, जातिका मनुष्य अपनी जगह ही श्रेष्ठ है।

अपने स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके दूसरोंकी सेवा करो—यह खास मंत्र है। भगवान् भी मनुष्यकी सेवाके भूखे हैं!

××× ××× ××× ×××

मनुष्ययोनि साधनयोनि है, भोगयोनि नहीं। **साधन तब होगा, जब अहंतामें यह बात बैठ जायगी कि मैं साधक हूँ, भोगी नहीं हूँ।** जैसा कर्ता होता है, वैसा ही कर्म होता है। कर्ता मुख्य है। कर्म निष्काम या सकाम नहीं होते, प्रत्युत कर्ता निष्काम या सकाम होता है।

सुख-दुःख साधन-सामग्री है, भोग-सामग्री नहीं। सुख-सामग्री है दूसरोंकी सेवा करनेके लिये और दुःख-सामग्री है सुखकी इच्छाका त्याग करनेके लिये।

भोजन, वस्त्र और मकान निर्वाहमात्रके होने चाहिये।

××× ××× ××× ×××

सांसारिक कामकी तरह भगवत्प्राप्ति धीरे-धीरे समय पाकर होती है—यह धारणा ठीक नहीं है। भगवत्प्राप्तिमें देश, काल, वस्तु आदिका व्यवधान नहीं है। केवल उत्कट अभिलाषाकी कमी है। भगवान् सब देश, काल, वस्तु आदिमें पूरे-के-पूरे मौजूद हैं। **ध्रुवजीको जिस दिन भगवान् मिले, वे ही पहले दिनमें भी मिल सकते हैं।** दिनमें क्या फर्क है? भगवान्में क्या फर्क है? प्रह्लादने कहा कि भगवान् खम्भेमें हैं तो भक्तकी वाणी सच्ची करनेके लिये भगवान् वहींसे प्रकट हो गये। ***'जँहि जिव उर नहचो धरै, तँहि ढिग परगट होय'।*** जीव जहाँ निश्चय करता है, वहीं भगवान् प्रगट हो जाते हैं।

शरीर बना रहे—यह इच्छा भगवत्प्राप्तिकी इच्छामें बाधक है।

जो दीखता है, वह आप नहीं हो। आप देखनेवाले हो।

××× ××× ××× ×××

जैसे जालेका उपादान और निमित्त कारण मकड़ी ही है, ऐसे ही सृष्टि बननेवाले भी परमात्मा हैं और बनानेवाले भी परमात्मा हैं। तत्त्वसे एक परमात्मा ही हैं।

जो सुगमतासे परमात्मप्राप्ति चाहता है, उसे परमात्मा कठिनतासे मिलते हैं। कारण कि सुगमताके बहाने वह शरीरका आराम चाहता है। परन्तु जो कठिनताके लिये तैयार रहता है, उसे परमात्मा सुगमतासे मिल जाते हैं।

मन में लागी चटपटी, कब निरखूँ घनस्याम।
'नारायन' भूल्यौ सभी, खान पान विश्राम॥

संसारका सुख लेना चाहते हैं—यही परमात्मप्राप्तिमें बाधा है। 'आराम'की जगह 'आ राम' कर दो।

××× ××× ××× ×××

साधक हर समय भगवान्‌की कृपाकी तरफ देखता रहे—**'तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणः'** (श्रीमद्भा० १०।१४।८)। प्रत्येक भाई-बहन अपनेपर भगवान्‌की विशेष कृपा मानें। भगवान्‌की कृपा कृपा करनेसे कभी तृप्त नहीं होती—***'जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती'*** (मानस, बाल० २८।२)। अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितिपर विशेष ध्यान न दें। परिस्थिति तो संसारका स्वरूप है। उनमें राजी-नाराज होना ही फँसावट है।

जैसे दर्जी कपड़े सिलकर पहना दे तो हम दर्जीके नहीं हो जाते, ऐसे ही माता-पिताने हमें शरीर पहना दिया। हम तो वास्तवमें भगवान्‌के ही हैं। शरीरसे माता-पिताकी सेवा करो।

××× ××× ××× ×××

परमात्मा निरपेक्ष तत्त्व है। सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार आदि सब सापेक्ष है। तत्त्व सापेक्ष नहीं है। वह 'है'-रूपसे है। **वास्तवमें वह 'है' और 'नहीं' दोनोंसे विलक्षण है।**

जो दीखता है, वह चेतनकी एक चमक है। असत् है ही नहीं, केवल सत्-ही-सत् है—**'वासुदेवः सर्वम्'।**

××× ××× ××× ×××

भगवान् कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(गीता ९।२९)

'मैं सम्पूर्ण प्राणियोंमें समान हूँ। उन प्राणियोंमें न तो कोई मेरा द्वेषी है और न कोई प्रिय है। परन्तु जो प्रेमपूर्वक मेरा भजन करते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें हूँ।'

भगवान् सबमें समान हैं, पर भक्त उनमें पक्षपात पैदा कर देते हैं। कोई भगवान्‌से विरुद्ध-से-विरुद्ध चले तो भी भगवान्‌का उनसे द्वेष नहीं है। जैसे, माँका बच्चेसे द्वेष नहीं होता। उसकी मारमें भी कृपा होती है।

नशा डाकूकी तरह है, जो पकड़नेपर छोड़ता नहीं। साधुको भिक्षा न दें तो वह चला जाता है, पर डाकू नहीं जाता! नशा मनुष्यको परवश कर देता है। **सन्त और भगवान् कभी परवश नहीं करते।**

××× ××× ××× ×××

नित्यकर्म और साधनमें भेद होता है। नित्यकर्म (पूजा-पाठ) तो हरेक मनुष्यको करना चाहिये। अपने कल्याणके उद्देश्यवाला साधक होता है। साधन करनेवाले बहुत कम होते हैं। साधन तभी बढ़िया होता है, जब मनुष्य भीतरसे 'मैं साधक हूँ'—ऐसा मान लेता है। साधन करना सब मनुष्योंका खास काम है।

यदि साधु बनना हो तो फिर परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही साधु बने। साधु बननेपर फिर मकान, धन आदिकी जरूरत नहीं है। संन्यास तो वैराग्यसे ही होता है। परमात्मप्राप्तिमें भोग और संग्रहकी इच्छाका त्याग पहली चीज है। **संन्यासीके लिये तो स्वरूपसे भोग और संग्रहका त्याग है। सच्चे साधुकी चिन्ता गृहस्थोंको स्वतः रहती है!**

निषिद्ध रीतिसे भोग और संग्रह करनेवालेको वैराग्य कभी नहीं होगा।

××× ××× ××× ×××

सच्चे हृदयसे भगवान्‌को पुकारो। सिवाय भगवान्‌के कोई रक्षा करनेवाला नहीं है। भगवान्‌की गोद सबके लिये तैयार है। वे सर्वसमर्थ हैं, परम दयालु हैं और सर्वज्ञ हैं। वे आपकी भीतरकी पीड़ाको, लगनको जानते हैं कि यह सच्ची है या नकली? जो भगवान्‌को नहीं मानता, उनका खण्डन करता है, उसकी भी भगवान् रक्षा करते हैं, पालन करते हैं।

याद करनेयोग्य केवल प्रभु ही हैं।

गीता, रामायण-जैसे ग्रन्थ रहते हुए, भगवान्‌का नाम रहते हुए हम दुःख पायें—यह आश्चर्यकी बात है!

××× ××× ××× ×××

वक्ता स्वतन्त्र नहीं होता, प्रत्युत श्रोताके अधीन होता है। श्रोताओंके कारणसे ही वक्ताके भीतर बातें पैदा होती हैं। **वक्ताको श्रोतासे अधिक लाभ होता है।**

संसार बहुत पतनकी तरफ जा रहा है। ऐसे समयमें सत्संग मिल जाय तो बड़ी भगवत्कृपा है! संसारका पद तो योग्यतासे मिलता है, पर भगवान्‌का आश्रय योग्यतासे नहीं मिलता। वे सबके लिये सुलभ हैं।

गीताकी सार बात है—शरणागति। ***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'***—यह सार चीज है। भगवान् पूरे-के-पूरे आपके हैं। उनकी शरण हो जायँ।

××× ××× ××× ×××

खास बात है—भगवान्‌पर भरोसा रखें, उनपर निर्भर हो जायँ। समयके सदुपयोगका विशेष ध्यान रखें। हरदम सावधान रहें। साधक वही होता है, जो हरदम सावधान रहता है। संसारके काममें कितनी ही सावधानी रखें, उसमें कमी रहेगी ही। अतः हरदम भगवान्‌में लगे रहो, उनको पुकारते रहो कि 'हे नाथ! आपको भूलूँ नहीं' और उनके नामका जप करते रहो। आशा भगवान्‌की ही रखो। संसारकी आशा रखनेसे दुःख पाना ही पड़ेगा—'**आशा हि परमं दुःखम्**'। परमात्मा भविष्यकी चीज नहीं हैं। उनकी प्राप्ति वर्तमानकी वस्तु है। भविष्यकी आशा रखनेसे धोखा होगा। परमात्माकी प्राप्ति आपको (स्वयंको) होती है, अन्तःकरणको नहीं। करणके भरोसे मत रहो। आप भी वर्तमान हैं और परमात्मा भी वर्तमान हैं, फिर देरी क्यों? उसकी प्राप्ति करणके द्वारा नहीं होती। उसकी प्राप्ति करण (मन-बुद्धि-इन्द्रियों)-के त्यागसे होती है। प्राणायाम शरीरकी शुद्धिके लिये है। अभ्याससे परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती।

जिससे जितना लोगे, उसके मरनेपर उतना ही दुःख होगा। अतः संसारसे लो मत, उसकी सेवा करो। किसीकी आशा मत रखो।

××× ××× ××× ×××

जहाँ वस्तुएँ अधिक होती हैं तथा अधिक वस्तुओंकी जरूरत होती है, वहीं दरिद्रता होती है।

बाहर संसारकी तरफ इतनी दृष्टि चली गयी कि भीतरका ज्ञान नष्ट हो गया! वास्तवमें आपका स्वरूप सुखरूप है—

'चेतन अमल सहज सुख रासी'। परन्तु दृष्टि बाहर चली जानेसे दुःख पा रहे हैं।

जो दूसरोंका नाश करता है, उसका नाश ब्याजसहित होगा!

××× ××× ××× ×××

व्यक्तियाँ अलग-अलग हैं, पर प्रकाश एक है। ऐसे ही अनन्त ब्रह्माण्ड जिस प्रकाशमें दीखते हैं, वह प्रकाश एक है। उसमें प्रकाशकत्वका अभिमान नहीं है। ज्ञान अथवा सत्ता एक है। नफा-नुकसान, जन्म-मरणमें बड़ा अन्तर है, पर इनके ज्ञानमें क्या अन्तर है? उस ज्ञानमें स्थित रहना है। सब अवस्थाएँ बनने-बिगड़नेवाली हैं, पर अपने होनेपनका ज्ञान बनने-बिगड़नेवाला नहीं है। उस ज्ञानमें मैं-पन नहीं है।

××× ××× ××× ×××

कमानेकी धुनसे भी देनेकी धुन ज्यादा होनी चाहिये। देनेसे ही धनकी रक्षा होती है—स्वार्थ और परमार्थ दोनों सिद्ध होते हैं। दूसरोंको सुख देनेसे अपनेको प्रत्यक्षमें शान्ति मिलती है। एक-दूसरेका हित, सेवा करना हमारी वैदिक संस्कृति है—

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥

(गीता ३।११)

'एक-दूसरेको उन्नत करते हुए तुमलोग परम कल्याणको प्राप्त हो जाओगे।'

××× ××× ××× ×××

वास्तवमें सन्तों और भगवान्‌की वाणीमें विरोध नहीं आता। विरोध हमारी बेसमझीसे दीखता है।

विवेकशक्तिका नाम मानवशरीर है। विवेकशक्ति मनुष्यमें विशेष है। मनुष्य तो विवेकका अनादर कर देता है, पर पशु-पक्षी ऐसा नहीं करते। मनुष्य विवेकशक्तिका सदुपयोग-दुरुपयोग दोनों कर सकता है। मनुष्यको परमात्मप्राप्तिका जन्मजात अधिकार है। अपने उद्धारकी योग्यता और अधिकार—दोनों भगवान्‌ने मनुष्यको दिये हैं। मानवशरीर दुरुपयोगके लिये नहीं है, प्रत्युत सबकी सेवा करनेके लिये और भगवान्‌को याद रखनेके लिये है।

××× ××× ××× ×××

मनुष्यशरीर मिलना बहुत दुर्लभ है। जो वस्तु मिल जाती है, उसकी दुर्लभताका ज्ञान नहीं होता। जो विवेकशक्ति है, वही मनुष्यपना है। शरीरको तो अधम बताया गया है—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित अति अधम सरीरा॥

(मानस, किष्किन्धा० ११। २)

देवता आदिमें भी विवेक है, पर वह भोगके लिये है। पशु-पक्षियोंका विवेक जीवन-निर्वाहके लिये है। मनुष्यका विवेक परमात्मप्राप्तिके लिये है। मनुष्यशरीर प्राप्त होनेपर परमात्मप्राप्तिके लिये निराश नहीं होना चाहिये। परमात्मा सभी मनुष्योंके लिये पूरे-के-पूरे हैं। उनपर सभीका पूरा हक लगता है।

जहाँ 'भोजनालय' का बोर्ड लगा हो, वहाँ वस्त्र कैसे मिलेगा? ऐसे ही संसारमें भगवान्‌ने बोर्ड लगा रखा है—**'दुःखालयम्'** (गीता ८। १५), फिर यहाँ सुख कैसे मिलेगा?

सहारा लेना जीवका स्वभाव है। अगर सहारा लेना ही हो तो बड़ेका लो, छोटेका क्यों लो? आप अपना सर्वस्व

भगवान्‌को दे दो और भगवान्‌का सर्वस्व ले लो! **'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (गीता ४। ११)। न रोकर जियो, न रोकर मरो। मौजसे जियो और मौजसे मरो। **आप परमात्माके अंश हो, मिट्टीके लौंदे (शरीर) नहीं हो।**

×××　　×××　　×××　　×××

भगवान् अनन्त हैं और उनकी रची सृष्टि भी अनन्त है। चौरासी लाख योनियोंसे भी अतिरिक्त अनन्त योनियाँ हैं, जिनका हमें पता नहीं! पर इसको जाननेसे लाभ भी क्या? संसारकी, शास्त्रोंकी बातोंका अन्त नहीं है। उन्हें जाननेसे क्या लाभ? न जाननेसे क्या हानि? हाँ, एक जानकारीका अभिमान और हो जायगा! अभिमानको निकालना बड़ा कठिन है!

×××　　×××　　×××　　×××

परमात्मप्राप्ति चाहनेवालेके लिये खास बात है—अपनी अहंताको बदलना कि 'मैं साधक हूँ'। अहंता बदल जायगी तो मन-बुद्धि आदि सब बदल जायँगे। व्यवहार बदल जायगा। साधन हरदम होगा। **पूरा संसार अहंता (मैं-पन)-में भरा हुआ है। अहंता बदलनेसे संसार बदल जाता है।**

×××　　×××　　×××　　×××

जो वस्तु थोड़ी होती है, उसका मूल्य अधिक होता है। आज कलियुगमें भगवान्‌की भक्ति बहुत थोड़ी हो गयी है। अतः भगवान् सस्ते हो गये हैं, भक्त मँहगे! जो भगवान्‌के भजनमें लगे हैं, उनके लिये जमाना बड़ा अच्छा आया है। साधन करनेसे आज जैसा फर्क पड़ता है, वैसा पहले नहीं पड़ता था। साधन करनेवालोंका यह अनुभव है कि काम-

क्रोधादि पहलेसे कम आते हैं, ज्यादा वेगसे नहीं आते और ज्यादा देर नहीं ठहरते।

××× ××× ××× ×××

कर्कोटक, दमयन्ती, नल और ऋतुपर्णका नाम लेनेसे कलियुग असर नहीं करता*। इसी तरह भगवन्नामका जप-कीर्तन करनेसे कलियुग असर नहीं करता। **भगवन्नाम अशुद्ध अवस्थामें भी लेना चाहिये, नहीं तो मनुष्य बीमारीकी अवस्थामें अशुद्ध रहनेसे भगवन्नाम नहीं लेगा तो सद्गति कैसे होगी? अन्तकालमें भगवान्‌का चिन्तन कैसे होगा?**

भगवन्नाम लेनेसे कलियुग, पाप, प्रेत-पिशाच आदि सब भाग जाते हैं। नाममें अनन्त शक्ति है। नाम लेनेसे बड़े-बड़े रोग मिट जाते हैं।

भगवान् हमारे पासमें हैं—ऐसा विश्वास न होनेसे ही भय लगता है।

बड़ोंको यदि छोटोंको शिक्षा देनी हो तो वाणीसे न देकर आचरणसे दे।

××× ××× ××× ×××

सबसे सुगम साधन है—शरणागति। वास्तवमें शरणागत होना नहीं है, हम सदासे भगवान्‌के शरण हैं। परन्तु हमने संसारका आश्रय ले लिया—यह गलती की। मेंहदीके पत्तेमें लालीकी तरह परमात्मा सबमें रहते हुए भी देखनेमें नहीं

---

* कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च।
ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम्॥
(महा० वन० ७९। १०)

आते। शरीर-संसार अनित्य हैं, जीव-परमात्मा नित्य हैं। शरीर-संसार एक हैं, पर गलतीसे दोनोंको अलग मान लिया। ऐसे ही जीव-परमात्मा एक हैं, पर गलतीसे दोनोंको अलग मान लिया। शरीरको संसारकी सेवामें अर्पित कर दें। **शरीर संसारके अर्पित होगा, संसार शरीरके अर्पित नहीं होगा। छोटा ही बड़ेके पास जाता है।**

××× ××× ××× ×××

मनुष्यमें करनेकी शक्ति, जाननेकी शक्ति और पानेकी इच्छा है। सेवा करनी है, स्वयंको जानना है और परमात्माको प्राप्त करना है। प्राप्त करनेके लिये परमात्माको मानना है। संसारसे मिली वस्तुको संसारके ही भेंट कर देना चाहिये।

सबमें परमात्माको देखना बड़ी भारी पूजा है। जैसे मूर्त्तिमें परमात्माका पूजन करते हैं, ऐसे ही सबमें भगवान्‌का पूजन करें।

पहले संसारसे जो लिया है, उसे चुकाये बिना और लोगे तो कर्जदार हो जाओगे। **कर्जदारकी मुक्ति नहीं होती।**

नित्यप्राप्तकी प्राप्तिके बिना कोई प्राप्तप्राप्तव्य नहीं हो सकता।

मनुष्ययोनि उन लोगोंके लिये 'कर्मयोनि' है, जिनको भटकना है। जिनको भटकना नहीं है, उनके लिये यह 'साधनयोनि' है। अनुकूल-प्रतिकूल दोनों परिस्थितियाँ साधन-सामग्री हैं।

वृक्ष लगाना धर्मशाला बनवानेसे भी उत्तम है। वृक्षसे पक्षियोंको रहनेकी जगह भी मिलती है और खानेकी सामग्री भी। धर्मशालासे तो बहुत जगह रुकती है, पर वृक्षसे ज्यादा जगह भी नहीं रुकती।

××× ××× ××× ×××

हमारे पास सबसे मूल्यवान् वस्तु है—समय। एक-एक क्षण समझ-समझकर खर्च करें। निरर्थक समय नष्ट न करें। समय देकर आप भगवान्‌की प्राप्ति कर सकते हैं, जीवन्मुक्त हो सकते हैं। मनुष्यजन्म दुर्लभ है, पर मिला हुआ होनेसे उसकी दुर्लभताका पता नहीं लगता। साठ वर्षोंमें कमाये हुए धनसे साठ मिनट भी नहीं मिल सकते। पिछले जन्मोंकी तरह इस जन्मके कुटुम्बी, मकान आदि यादतक नहीं रहेंगे। समयको व्यर्थ नष्ट करना बड़ी भारी हानि है। घड़ी तभीतक चलती है, जबतक चाबी भरी हुई है। धनप्राप्तिमें सब स्वतन्त्र नहीं हैं, पर भगवत्प्राप्तिमें सब स्वतन्त्र हैं।

भगवान्‌के प्रत्येक विधानमें प्रसन्न रहनेवालेके भगवान् वशमें हो जाते हैं।

भगवान्‌की स्मृति समस्त विपत्तियोंका नाश करनेवाली है—**'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्'** (श्रीमद्भा० ८।१०।५५)। अतः प्रत्येक कार्यके समय भगवान्‌का स्मरण करो।

××× ××× ××× ×××

जिन परमात्माको प्राप्त करना है, वह सबको नित्यप्राप्त है। जिस संसारसे हटना है, वह स्वतः ही हट रहा है। शरीर-संसारके साथ न आप रह सकते हैं, न वे आपके साथ रह सकते हैं। या तो संसारसे उपराम हो जायँ, या परमात्माके सम्मुख हो जायँ।

सभी अवस्थाएँ (जाग्रत् आदि) संसारकी हैं। जिन अंगोंसे हम संसारको देखते हैं, वे भी संसारके ही हैं।

घरमें स्वयं सुख न लेकर दूसरोंको सुख, आदर देना शुरू कर दें। आने-जानेवाली चीजोंसे अपनेको बड़ा मानना

गलती है। **आप छोटोंकी रक्षा नहीं करते, तो फिर अपनेसे बड़ोंसे रक्षा चाहना गलती है।** लेनेकी इच्छा छोड़कर सबकी सेवा करें। देनेसे वस्तु बढ़ती है। दूसरोंको सुख देनेसे अपना सुख बढ़ता है।

××× ××× ××× ×××

गीतामें कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनों योगोंका वर्णन आया है। अपनी मान्यता और बुद्धिकी प्रधानता रहनेके कारण टीकाकारोंमें मतभेद रहता है। तत्त्वप्राप्तिमें सब एक हो जाते हैं। अतः साधनमार्गोंकी भिन्नता दोषी नहीं है। दूसरेका खण्डन करना दोषी है। दूसरेका खण्डन करनेवाला वास्तवमें अपना ही खण्डन करता है। सभीका प्रापणीय तत्त्व एक ही है। भूख और तृप्ति सबकी एक होती है, पर रुचि दोकी भी समान नहीं होती।

हम अपनी बुद्धिसे गीताको नहीं समझ सकते। अतः गीताकी शरण हो जाना चाहिये। गीतामें भगवान्‌ने समग्ररूपका वर्णन विशेषतासे किया है। भगवान्‌के सभी रूप (निर्गुण-सगुण, निराकार-साकार) समग्रके अन्तर्गत आ जाते हैं। आपने भगवान्‌का जैसा स्वरूप पढ़ा, सुना या समझा हो उसी रूपका ध्यान और नामजप करें। **भगवान् कैसे हैं—यह भगवान् भी नहीं जानते कि मैं कैसा हूँ! वहाँ कैसा-वैसा नहीं चलता। जैसा आप मानें, भगवान् वैसे ही हैं—'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (गीता ४।११)। बुद्धि प्रकृतिको भी नहीं पकड़ सकती, फिर भगवान्‌को कैसे पकड़ सकती है? पर भगवान् चाहें तो हमारी बुद्धिमें आ सकते हैं। हम भगवान्‌को

जान तो नहीं सकते, पर उन्हें अपना मान सकते हैं। जैसे माँको अपना मानें तो माँ पूरी-की-पूरी अपनी है, ऐसे ही भगवान्‌को अपना मानें तो भगवान् पूरे-के-पूरे अपने हैं। **अपनेको भगवान्‌से अलग मान लेना और शरीरको संसारसे अलग मान लेना गलती है।**

भगवान्‌को अपना माननेकी जिम्मेवारी हमारी ही है। भगवान्‌ने तो हमें अपना मान ही रखा है।

××× ××× ××× ×××

राग-द्वेष स्थूल हैं, रसबुद्धि सूक्ष्म है। रसबुद्धिसे संसारकी चीज अच्छी लगती है। रागपूर्वक ग्रहण करना और द्वेषपूर्वक त्याग करना—दोनों ही बाँधनेवाले हैं। '**रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्**' (गीता २। ६४)-का तात्पर्य है—शास्त्रको सामने रखे, राग-द्वेषको सामने न रखे। **ग्रहण और त्यागका इतना दोष नहीं है, जितना रागपूर्वक ग्रहण और द्वेषपूर्वक त्यागका दोष है।**

वस्तुएँ दोषी नहीं हैं, उनमें महत्त्वबुद्धि दोषी है। मल-मूत्रका त्याग 'मैं' का त्याग है और धनका त्याग 'मेरा' का त्याग है। परन्तु मलके त्यागका अभिमान नहीं आता, धनके त्यागका अभिमान आता है। कारण कि धनमें महत्त्वबुद्धि है, मल-मूत्रमें निकृष्टबुद्धि है।

साधक या तो सुखसे भी सुखी हो जाय और दुःखसे भी सुखी हो जाय अथवा सुखसे भी दुःखी हो जाय और दुःखसे भी दुःखी हो जाय।

अगर आप जल्दी उद्धार चाहते हैं तो किसीके गुण-

दोषोंको न देखकर, उसे वासुदेव समझकर मनसे दण्डवत् प्रणाम करो। स्वरूपसे सब निर्दोष हैं। गुण-दोष तो साबुनकी तरह ऊपरसे चिपकाये हुए हैं।

××× ××× ××× ×××

सबसे पहले ओंकारका उच्चारण हुआ है। उससे फिर त्रिपदा गायत्री हुई। जीव भी त्रिपाद है—जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति। तुरीयावस्था अमात्र है—मात्रासे अतीत है। अहम्‌से रहित स्वरूप अमात्र है। जिसके आधारपर सृष्टि रची जाती है, वह तुरीय (चौथी) अवस्था है। ध्यान-धारणा सूक्ष्मशरीरकी और समाधि कारणशरीरकी होती है। तुरीय सबका आधार और प्रकाशक है। उस तत्त्वकी प्राप्तिके लिये ही हम यहाँ इकट्ठे हुए हैं। उसकी प्राप्तिमें अहंता (मैं-पन) और ममता (मेरा-पन) बाधक हैं। अहंता-ममताके त्यागसे परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति होती है। वह परमात्मतत्त्व अवस्थातीत, निरपेक्ष, गुणातीत तत्त्व है।

रावण और हिरण्यकशिपुके राज्यमें भी गर्भपात-जैसा महापाप नहीं हुआ था! आज यह महापाप घर-घर हो रहा है। माँ ही अपनी सन्तानका नाश कर दे तो फिर किससे रक्षाकी आशा करें? बड़े दुःखकी बात है कि ऋषियोंकी सन्तान होकर आज लोग राक्षसोंसे भी नीचे चले गये! अगर संयम रखें तो नसबंदी, गर्भपात आदि पाप क्यों करने पड़ें!

मेरा जनसंख्या बढ़ाने या घटानेका उद्देश्य नहीं है, प्रत्युत मुक्तिका उद्देश्य है।

××× ××× ××× ×××

राग ही जन्म-मरणका कारण है। राग मिटेगा जीवनका एक

उद्देश्य बननेसे। आजकल पढ़ाईका उद्देश्य क्या है—इसका भी मुझे अभीतक ठीक उत्तर मिला नहीं! **उद्देश्य बने बिना भटकना मिटेगा नहीं।** बचपनमें खेल-कूद अच्छा लगता था। बड़े होनेपर रुपयोंका उद्देश्य हो गया तो सब खेल-कूद छूट गये। ऐसे भगवान्का उद्देश्य हो जाय तो कितना लाभ है!

भगवान्को अपना मान लो तो सब काम ठीक हो जायगा। भगवान्के सिवाय अपना कोई था नहीं, है नहीं, होगा नहीं, हो सकता नहीं। **अन्य भावोंकी अपेक्षा मित्रभावमें विलक्षणता है कि अपनेसे छोटे, समान तथा बड़े सबसे मित्रता हो सकती है।** भगवान्ने सिद्ध (निषादराज), साधक (विभीषण) और संसारी (सुग्रीव)—तीनोंको अपना मित्र बनाया। निषादराजने पहले भगवान्से कहा कि हमारे घर पधारो, विभीषणने बादमें कहा और सुग्रीवने कहा ही नहीं! अतः **आप कैसे ही हों, भगवान्के मित्र बन सकते हैं।** परन्तु साधक बनकर मित्रता करो, संसारी (भोगी) बनकर नहीं। भगवान्में तो मित्र, माता, पिता, गुरु, बेटा आदि सबकी भूख है! भरतजीमें दास्यभाव भी था, मित्रभाव भी था। खास बात है—***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'।*** सबकी सेवा करो, पर किसीसे कुछ चाहो मत। **भगवान्से भी आशा मत रखो।**

××× ××× ××× ×××

परमात्माका ज्ञान परमात्मासे अभिन्न होनेपर ही होता है और संसारका ज्ञान संसारसे अलग होनेपर ही होता है—यह बात आप याद कर लें।

संसारको सत्ता-महत्ता देते हुए राग-द्वेष मिटेंगे नहीं और

राग-द्वेष मिटे बिना **'वासुदेवः सर्वम्'** का अनुभव होगा नहीं। **जिसके भीतर राग नहीं है, वैराग्य है, वही 'वासुदेवः सर्वम्' को जान सकता है। वैराग्यकी आवश्यकता प्रत्येक साधकको है।**

'हमने रुपयोंका त्याग कर दिया है'—यह भाव भी रुपयोंका महत्त्व है। **त्याज्य वस्तुका महत्त्व होनेसे ही त्यागका अभिमान आता है।** अगर संसारके त्यागका अभिमान हो तो वास्तवमें संसारका तत्त्व जाना नहीं।

श्रोता—वैराग्य कैसे हो?

स्वामीजी—वैराग्य होता है—वैराग्यवान् सन्तका संग करनेसे अथवा उनकी बातें सुननेसे, उनकी पुस्तकें पढ़नेसे। भगवान्‌में प्रेम हो जाय तो संसारसे वैराग्य हो जायगा।

××× ××× ××× ×××

संसारकी कोई भी वस्तु सुखबुद्धिसे न लें। भोजन करें तो औषधरूपसे करें। किसीसे बात भी करें तो उसमें सुख न लें। **सुख लेनेसे परमात्मप्राप्तिकी लगन नहीं होती, संसारमें खर्च हो जाती है।** लगनवालेको भगवान्‌की ओरसे सब चीज मिलती है। अतः लगन बढ़ायें। नामजप और प्रार्थना करें। कोई काम सुखबुद्धिसे न करें।

××× ××× ××× ×××

जैसे आपके मनमें स्वतः-स्वाभाविक यह भाव है कि हम यहाँ स्थायी रहनेवाले नहीं हैं, सत्संगके लिये आये हैं और चले जायँगे। ऐसे ही घरमें रहते हुए यह मान लें कि हम यहाँ आये हैं और चले जायँगे। यहाँ कोई रहनेवाला

नहीं है, सब जानेवाले हैं। जितना स्थायीभाव होता है, उतना ही अन्याय होता है।

नहीं सोचो तो शामकी भी मत सोचो, और सोचो तो जन्मके बादकी भी सोचो।

शरीरका पता नहीं, जो करना हो जल्दी कर लेना चाहिये।

××× ××× ××× ×××

जैसे शरीरमें हृदय-देश मुख्य है, ऐसे भारत भूमण्डलका हृदय-देश है। इसमें मनुष्य अपनी बहुत जल्दी उन्नति कर सकते हैं। कलियुगमें तो बहुत जल्दी अपना कल्याण कर सकते हैं। भारतमें भी गंगा-यमुनाके बीचका देश विशेष पुण्यकारक है। इसमें पुण्यका फल भी बढ़िया होता है और पापका फल भी!

××× ××× ××× ×××

मेरे मनकी हो जाय—इसका नाम कामना है। **हम सभीसे अपनी मनचाही चाहते हैं—यह बाधक है।** हमारा भाव यह होना चाहिये कि दूसरोंकी मनचाही हो जाय। यदि भगवान् और सन्तकी हाँ-में-हाँ मिला दें तो जीवन्मुक्त हो जायँ।

संसारका सम्बन्ध तो मनमें पड़ा है, पर समझते हैं बाहर!

भगवत्सम्बन्धी बातसे लाभ होता ही है, और संसार-सम्बन्धी बातसे नुकसान होता ही है।

किसीको बुरा समझना अपने लिये और उसके लिये—दोनोंके लिये हानिकारक है।

××× ××× ××× ×××

कल्याण गंगाजीमें नहीं पड़ा है, आपके भावमें पड़ा है—

'जेहि जिव उर नहचो धरै, तेहि ढिग परगट होय' (जीव जहाँ निश्चय करता है, भगवान् वहीं प्रकट हो जाते हैं)। गंगास्नान, नामजप आदि करके निश्चिन्तता आ जानी चाहिये कि अब हमारा कल्याण होगा ही, इसमें कोई सन्देह नहीं। निश्चिन्तता असली होनी चाहिये, नकली नहीं। ***'सबै भूमि गोपाल की, तिसमें अटक कहा। जिसके मनमें अटक है, सोई अटक रहा॥'*** वास्तवमें कल्याण स्वतःसिद्ध है, पर जीवने अपनी मान्यतासे बन्धन कर रखा है। बन्धन, दुःख, दरिद्रता आपकी बनायी हुई है।

हे नाथ! मैं आपका हूँ, अब कुछ करना-जानना-पाना नहीं, कोई भय-चिन्ता नहीं—यह इसी क्षण स्वीकार कर लें।

भगवान् किसी जीवसे अलग हो जायँ—यह भगवान्‌की सामर्थ्यके बाहरकी बात है। भगवान्‌के बिना नरककी भी सत्ता नहीं है। **भगवान् जैसे वैकुण्ठमें हैं, वैसे-के-वैसे ही नरकोंमें भी हैं। जो कहीं हो, कहीं न हो, वह भगवान् नहीं हो सकता। जो किसीका हो, किसीका न हो, वह भी भगवान् नहीं हो सकता।** भगवान्‌का कहीं भी अभाव कैसे हो सकता है? आप पाप करते हो तो भगवान् नरकमें उसकी सजा देते हैं। उस सजामें भी मजा है! उससे जीवके पाप कटते हैं और वह शुद्ध होता है। भगवान्‌के प्रसादमें करेला भी होता है, रसगुल्ला भी। शुद्ध-से-शुद्ध जगहमें और गन्दी-से-गन्दी जगहमें भी भगवान् वैसे-के-वैसे ही हैं। गन्दापना अनित्य है, भगवान् नित्य हैं। अच्छी-गन्दी आपकी भावना है। यह हमारी बनायी हुई है, भगवान् बनाये हुए नहीं हैं।

'जन्म जन्म मुनि जतनु कराहीं' (मानस, किष्किन्धा० १०। २)—**यह आपकी धारणाके कारण है। वास्तवमें भगवान् 'जतन' के अधीन नहीं हैं।** आप उन्हें स्वीकार कर लें तो वे आ जायँगे। भगवान् सब जगह हैं, पर आप उनको स्वीकार नहीं करते—यही बाधा है। यदि आपसे स्वीकार नहीं होता तो रोकर भगवान्से कहो। आपमें बेचैनी आनी चाहिये। व्याकुल हो जाओ तो समाधान हो जायगा। अगर व्याकुलता कम होती है तो देरी होगी, पर लाभ अवश्य होगा। आप देरी सहते हो, इसलिये देरी होती है। या तो मस्त, निर्भय, निश्चिन्त हो जाओ, या व्याकुल हो जाओ। कोई एक पूरी बात हो। अधूरापन नहीं रहना चाहिये। जैसा आपका स्वभाव हो, वैसा हो जाओ।

××× ××× ××× ×××

'मैं गृहस्थ हूँ'—यह अहंता रहेगी तो गृहस्थका काम तत्परतासे होगा, साधनका काम बारी निकालना होगा। अतः 'मैं साधक हूँ'—यह अहंता होनी बहुत आवश्यक है। ऐसी अहंता रहनेपर साधनविरुद्ध काम नहीं होगा। अहंता (मैं-पन) बदलनेपर जीवन बदल जाता है।

अच्छा साधक भूलमें भी साधन-विरुद्ध काम नहीं करता। वह शरीरकी भी परवाह नहीं करता। **शरीरका विशेष ख्याल रखेगा तो साधन ठीक नहीं होगा—*'जिमि अबिबेकी पुरुष सरीरहि'*** (मानस, अयोध्या० १४२। १), ***'राम भजनमें देह गले तो गालिये'।***

××× ××× ××× ×××

बेईमानीसे बन्धन है, ईमानदारीसे मुक्ति है। संसार-शरीरको

अपना मानना बेईमानी है। विचार करें, शरीरपर अपना वश चलता है क्या? या तो इसपर अपना अधिकार जमा लो, या इसको अपना मानना छोड़ दो। शरीर किसी भी दृष्टिसे अपना नहीं है। शरीर संसारसे अलग नहीं हो सकता। शरीरको संसारकी सेवामें लगाना कर्मयोग है, प्रकृतिका मानना ज्ञानयोग है और भगवान्‌का मानना भक्तियोग है। शरीरको अपना मानना जन्ममरणयोग है!

जिसकी चीज है, उसीको दे दी तो मुक्ति हो गयी। अपना माननेमें जोर आता है, छोड़नेमें क्या जोर? प्रबन्ध करो, पर अपना मत मानो। जो चीज मिली है और बिछुड़नेवाली है, वह वस्तु अपनी नहीं होती। अपनी वस्तु 'शोकशंकु' (शोकरूपी काँटा) है—

यावतः कुरुते जन्तुः सम्बन्धान्मनसः प्रियान्।
तावन्तोऽस्य निखन्यन्ते हृदये शोकशङ्कवः॥

(विष्णुपुराण १।१७।६६)

'जीव अपने मनको प्रिय लगनेवाले जितने ही सम्बन्धोंको बढ़ाता जाता है, उतने ही उसके हृदयमें शोकरूपी काँटे गड़ते जाते हैं।'

श्रोता—निर्विकल्प बोध और उसकी प्राप्तिकी विधि क्या है?

स्वामीजी—बोध है—'है', और विधि है—'नहीं' का त्याग।

××× ××× ××× ×××

जैसे विवाह होनेके बाद व्यक्ति आजीवन विवाहित ही रहता है, कुआँरा नहीं होता, ऐसे ही आप एक बार भगवान्‌के

शरण होनेके बाद सदा शरणमें ही रहें। सन्तुष्ट हो जायँ कि अब अपने घर आ गये! अब भजन-स्मरण ही करना है। संसारकी अनुकूलता और प्रतिकूलतासे हमें कोई मतलब नहीं। अब हम भगवान्‌के हो गये। जैसे, अब हम विद्यालयमें भरती हो गये, अब हमें पढ़ाई करना है। यह सावधानी रखें कि समय व्यर्थ न जाय। किसी समय भगवान्‌का चिन्तन न हो तो यह घाटा है, नुकसान है। **भगवत्प्राप्तिमें देरी आपके कारण हो रही है। आप देरीको सहन कर रहे हो।** भगवत्प्राप्ति, तत्त्वज्ञान अथवा संसारका त्याग तत्काल होता है, धीरे-धीरे नहीं। क्या विवाह होनेमें, दान देनेमें कई दिन लगते हैं?

किसी गुरुमें श्रद्धा न रहे तो उनके दिये नामकी एक माला रोज जप ले और उनकी निन्दा न करे।

××× ××× ××× ×××

व्यवहारमें तो संसार है—ऐसा दीखता है, पर विचार करें तो संसार निरन्तर अभावमें जा रहा है। संसारका अभाव ही सच्चा है, संसार सच्चा नहीं है। 'है' का विभाग परमात्मा हैं और 'नहीं' का विभाग संसार है। संसार बनावटी है। बनावटी चीज नकली होती है। जैसे मिट्टीके बरतन बनावटी हैं, मिट्टी ही सत्य है, ऐसे ही संसार बनावटी है, परमात्मा ही सत्य हैं। संसारसे परमात्माको, मिट्टीके बर्तनोंसे मिट्टीको निकाल दो तो क्या शेष रहेगा? संसाररूपसे परमात्मा ही बने हुए हैं। अतः भाव, क्रिया, पदार्थसे सबको सुख पहुँचायें, किसीको कष्ट न पहुँचायें तो यह '**वासुदेवः सर्वम्**' हो जायगा।

जो संसारसे कुछ चाहता है, वह घाटे-ही-घाटेमें रहता है।

×××　　×××　　×××　　×××

जिसके भीतर भगवत्प्राप्तिकी भूख हो, उसके लिये **'वासुदेवः सर्वम्'** बहुत बढ़िया बात है। **'वासुदेवः सर्वम्'** का अनुभव करनेवाला दुर्लभ महात्मा बन जाता है। **सब जगह भगवान्‌को देखनेवालेसे भगवान् कभी छिप नहीं सकते—यह रहस्यकी बात है।** तू ही है—यह परमात्माकी उपासनाका एक तरीका है।

'वे' उसको कहते हैं, जो खास अपने हैं। 'वही', 'सोई' का भी यही तात्पर्य है—यह गुप्त बात है। रामायणमें कई जगह 'सोई' पद आया है।

सब जगह भगवान्‌को ही देखना उनको पकड़नेका उत्तम साधन है।

×××　　×××　　×××　　×××

संसारका परिवर्तन कभी बन्द नहीं होता, निरन्तर चलता रहता है। **संग्रह और सुखभोगके समय यह परिवर्तनशील नहीं दीखता, आँखें मिच जाती हैं!** यदि साधककी दृष्टि संसारकी परिवर्तनशीलताकी तरफ निरन्तर बनी रहे तो भोग तथा संग्रहकी इच्छा नहीं रहेगी। भोग तथा संग्रहकी इच्छा मिटनेसे ही साधन बनता है, अन्यथा बेहोशी रहती है। शरीर-संसार जा रहे हैं—यह जागृति रहनी चाहिये। परिवर्तनशीलका ज्ञान होनेसे अपरिवर्तनशीलका ज्ञान स्वतः हो जाता है। संसारके परिवर्तनमें कभी विश्राम होता ही नहीं। संसारमें निरन्तर श्रम-ही-श्रम है। विश्राम केवल परमात्मामें ही है।

परिवर्तनको देखनेसे परिवर्तन मिट जायगा। अपरिवर्तनको देखनेसे अपरिवर्तनकी प्राप्ति हो जायगी। इन दोनोंका नाम योग है। संसारका सम्बन्ध विवेक-विरोधी है और परमात्माका सम्बन्ध विवेक-सम्मत है। संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर संसारका अभाव हो जायगा।

××× ××× ××× ×××

दूसरोंके साथ मैं-मेरेका सम्बन्ध न रखकर केवल सेवाका सम्बन्ध रखे। सेवाके लिये ही सम्बन्ध रखनेसे वह सम्बन्ध बन्धनकारक नहीं होगा। समय, समझ, सामग्री और सामर्थ्यको केवल सेवामें ही खर्च करना है।

अपने लिये कर्म करनेसे शरीरमें अहंता-ममता दृढ़ होते हैं और दूसरोंके लिये कर्म करनेसे अहंता-ममता शिथिल होते हैं। **दूसरोंके साथ केवल सेवाका सम्बन्ध रखनेका परिणाम है—सम्बन्ध-विच्छेद। चाहे मैं-मेराका सम्बन्ध न रखे, चाहे सेवाका सम्बन्ध रखे, दोनोंका परिणाम एक ही है—सम्बन्ध-विच्छेद।** दोनों ही साधन हैं।

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। (गीता २।४७)

'कर्तव्य-कर्म करनेमें ही तेरा अधिकार है, फलोंमें कभी नहीं।'

तात्पर्य है कि हमारा दूसरोंकी सेवा करनेका अधिकार है, सेवा लेनेका नहीं। कर्तव्य अपना है, अधिकार दूसरेका। जैसे, माता-पिताकी सेवा करना पुत्रका कर्तव्य है और माता-पिताका अधिकार है।

××× ××× ××× ×××

जो कुछ करता है, केवल अपने लिये करता है, वह साधक नहीं होता, प्रत्युत संसारी होता है। चाहे संसारके लिये करो, चाहे प्रकृतिके लिये करो, चाहे भगवान्‌के लिये करो, पर अपने लिये मत करो। संसारके लिये करना भौतिक साधना (कर्मयोग) है, प्रकृतिके लिये करना आध्यात्मिक साधना (ज्ञानयोग) है और भगवान्‌के लिये करना आस्तिक साधना (भक्तियोग) है।

आपका उद्देश्य परमात्माकी प्राप्ति हो तो आप संसारको सत्य मानो, असत्य मानो, अनिर्वचनीय मानो, साधन हो सकता है। **संसारकी सत्ता नहीं बाँधती, इसकी महत्ता, स्वार्थबुद्धि, लेनेकी इच्छा ही बाँधनेवाली है।** यदि संसारको सत्य मानो तो उसकी वस्तुओंसे संसारकी सेवा करें। कर्मसे सेवा तेज है, सेवासे पूजा तेज है। दूसरेकी सुख-सुविधाके लिये कर्म करनेसे कल्याण हो जाता है—यह भौतिक साधना है। सड़कपर काँटा पड़ा हो तो उसको एक तरफ कर देना भौतिक साधना है। सबको भगवत्स्वरूप मानकर पूजनबुद्धिसे उनकी सेवा करें तो '**वासुदेवः सर्वम्**' का अनुभव हो जायगा। बन्धन लेनेसे होता है। त्यागनेसे बन्धन खुल जाता है।

सरोवरमें डुबकी लगाओ तो मनों जल ऊपर रहनेपर भी अपने ऊपर भार नहीं आयेगा। परन्तु अपना मानकर घड़ा कंधेपर लोगे तो भार हो जायगा। भार अपना माननेमें है।

कल्याण त्यागसे होता है, वेदान्त पढ़नेसे नहीं।

××× ××× ××× ×××

विचार करना चाहिये कि अबतक कितने वर्ष बीत गये, उसमें हमने क्या किया? यदि यही गति रही तो आगे कब

काम पूरा होगा? यदि नहीं कर सकते तो गति बदलो। हम प्रतिक्षण मर रहे हैं। एक-एक श्वासको कीमती समझो।

××× ××× ××× ×××

परिवार-नियोजन भारतवर्षके लिये बड़ी घातक चीज है। भारतमें जितने तरहका अन्न, फल, जड़ी-बूटी आदि पैदा होती हैं, उतनी किसी देशमें नहीं। यहाँ सूर्यकी कई तरहकी किरणें पड़ती हैं। यहाँ छः ऋतुएँ होती हैं, जो अन्य जगह नहीं होतीं। शूरवीर, सती, ब्रह्मचारी, राजा, सन्त-महात्मा आदि जैसे इस देशमें हुए, उतने अन्य देशमें नहीं।

××× ××× ××× ×××

करनेसे ही बन्धन हुआ है। करना सर्वथा छोड़ दो तो तत्त्वकी प्राप्ति हो जायगी। करनेसे प्रकृतिके साथ सम्बन्ध होता है। भगवान् भी अवतारकालमें प्रकृतिकी सहायतासे ही क्रिया (लीला) करते हैं। जो सब देश-कालादिमें परिपूर्ण है, उस परमात्माकी प्राप्तिके लिये क्या करना? करनेसे तो हम उनसे दूर होते हैं! परमात्मा अप्राप्त नहीं हैं। करनेमें लगे रहनेसे उनका अनुभव नहीं होता। गीतामें भी '**एवं विदित्वा**' (२। २५) कहा है, '**एवं कृत्त्वा**' नहीं कहा।

श्रोता—परन्तु मनुष्य कर्म किये बिना रह सकता ही नहीं—'**न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्**' (गीता ३। ५)।

स्वामीजी—प्रकृतिके परवश होनेसे ही करना पड़ता है। कोई रेलपर चढ़ जायगा तो उसे जाना ही पड़ेगा। परन्तु प्रकाशमें क्या क्रिया होती है? अतः **शान्त, चुप हो जाओ तो तत्त्वका अनुभव स्वतः हो जायगा।**

××× ××× ××× ×××

सभी ग्रन्थोंमें गीताकी वाणी विलक्षण है; क्योंकि यह भगवान्‌की वाणी है! भगवान् अनादि हैं। उनका सिद्धान्त बहुत विलक्षण है। वह सिद्धान्त है— **'वासुदेवः सर्वम्'** (गीता ७। १९) 'सब कुछ वासुदेव ही है'। **मनका लगना और न लगना— ये दो अवस्थाएँ तभीतक हैं, जबतक एक परमात्माके सिवाय दूसरी सत्ताकी मान्यता है। 'वासुदेवः सर्वम्'** का अनुभव करनेके लिये मन-वाणी-शरीरसे सबका आदर करें, सबका सुख चाहें। किसीका भी बुरा न चाहें।

यदि त्रिलोकीकी सेवा करना चाहते हो तो बुराई न करो, न सोचो, न सुनो, न कहो। बुराई छोड़नेसे भलाई स्वतः होगी। स्वतः होनेवाली चीज ही सदा रहती है। सद्‌गुण-सदाचार नित्य हैं। आसुरी सम्पत्तिको हटानेसे दैवी सम्पत्ति स्वतः प्रकट होगी। भलाईमें जो कमी है, उसीका नाम बुराई है।

हमें संसार स्वतः-स्वाभाविक दीखता है। वास्तवमें परमात्मा स्वतः-स्वाभाविक हैं, संसार नहीं। संसार परतः है। परमात्मा प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता, प्रत्युत प्रमाण उससे सिद्ध होते हैं। परमात्मासे प्रकाशित होनेवाली वस्तु परमात्माको कैसे प्रकाशित करेगी?

जबतक त्यागी है, तबतक त्याग नहीं हुआ। त्याग होनेपर त्यागी नहीं रहता।

××× ××× ××× ×××

'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'—इसमें खास बात है ***'दूसरो न कोई'*** अर्थात् अनन्यभावसे भगवान्‌को अपना मानें। एक भगवान्‌के सिवाय किसीको भी अपना न मानें।

केवल भगवान्‌को ही अपना माननेकी सामर्थ्य मनुष्यमें ही है, देवता आदिमें नहीं। गीतामें आया है कि देवता भी भगवान्‌के चतुर्भुज रूपको देखनेके लिये नित्य लालायित रहते हैं (११।५२), फिर भी वे देवता बने बैठे हैं! भगवान्‌की प्राप्तिमें अन्यका आश्रय ही बाधा है। देवताओंमें अनन्यता नहीं है। आपकी इच्छा भी देवताओंकी इच्छा-जैसी है। अनन्यता भी भगवान्‌से माँगो। भूख न लगे तो भूखकी भूख तो लगनी चाहिये कि भूख कैसे लगे? तभी वैद्यके पास जाते हैं। ऐसे ही अनन्यताकी भूख लगनी चाहिये कि अनन्यता कैसे हो?

सन्त-महात्मा वही बात कहते हैं, जो हम कर सकते हैं। शास्त्र, धर्म, सन्त-महात्मा और भगवान्—ये कभी किसीके विमुख नहीं होते।

खोज करो तो गलती अपनी ही निकलेगी, भगवान्‌की नहीं। **जबतक दूसरेकी गलती दीखती है, तबतक हमारी बड़ी भारी गलती है।** दूसरोंकी तरफ देखे ही नहीं। भागवत, एकादश स्कन्धमें कदर्य ब्राह्मणकी कथा आती है। लोग उसपर पेशाब भी कर देते तो उसको लोगोंकी गलती न दीखकर अपनी ही गलती दीखती थी। जबतक दूसरेकी कमी दीखती है, तबतक अपनी बड़ी भारी कमी है।

××× ××× ××× ×××

ज्ञानकी पहली भूमिका 'शुभेच्छा' तो आपमें है। कमी दूसरी भूमिका 'विचारणा' की है। प्रत्येक कार्य विचारपूर्वक करो, सुचारुरूपसे करो। किसीको किंचिन्मात्र भी दुःख न हो। किसीके मनके विरुद्ध काम न हो। **हृदयमें किसीका**

बुरा सोचना छोड़ दो। इससे आध्यात्मिक मार्गमें बड़ी उन्नति होगी।

मीठा बोलण, निंब चलण, पर अवगुन ढक लैण।
पाँचों चंगा नानका, हरि भज, हाथां दैण॥

सत्संग सुननेवालोंसे लोग अच्छे बर्तावकी आशा रखते हैं। अमृतका प्रसार करो, विषका नहीं। **भला होनेके लिये बुराईका त्याग आवश्यक है।**

सबकी सेवा करें, आशा किसीसे न रखें। आशा पूरी होनेपर मोहमें फँस जायँगे और आशा पूरी न होनेपर क्रोधमें फँस जायँगे।

××× ××× ××× ×××

अनुकूल परिस्थिति मिले, प्रतिकूल न मिले—यह इच्छा कीट-पतंगसे लेकर ब्रह्माजीतक रहती है। परिस्थिति आने-जानेवाली है। वास्तविक तत्त्व सम है।

रुपयोंसे स्वाधीनता नहीं आती, प्रत्युत पराधीनता आती है। स्वाधीनता तब आती है, जब कोई इच्छा न रहे। मनचाही बात होनेपर राजी हो गये तो यह मनकी परतन्त्रता है। **सर्वथा इच्छारहित होना ही असली स्वतन्त्रता है।** राज्य, सम्पत्ति, योग्यता आदि सब 'पर' है। अपने जीनेकी इच्छा भी नहीं रहनी चाहिये। भगवान्‌की चाहमें अपनी चाह मिला दे। **मरनेकी इच्छा कोई नहीं करता, पर जीता कोई नहीं रहता!**

दूसरेके दुःखसे दुःखी होनेपर अपने दुःखसे दुःखी नहीं होना पड़ता। दूसरेके सुखसे सुखी होनेपर 'भोग'की इच्छा नहीं रहती, और दूसरेके दुःखसे दुःखी होनेपर 'संग्रह'की इच्छा नहीं रहती।

कामना मिटनेसे ममता और अहंता—दोनों मिट जाती हैं।

चाहरहित मनुष्यका हृदय कोमल होता है। चाहवालेका हृदय कठोर होता है।

××× ××× ××× ×××

राजनीति नरकोंमें जानेके लिये है—तपेश्वरी, फिर राजेश्वरी, फिर नरकेश्वरी। नीतिशास्त्रसे धर्मशास्त्र और धर्मशास्त्रसे मोक्षशास्त्र श्रेष्ठ है। मोक्षशास्त्र कल्याणके लिये है।

अपने लिये कुछ नहीं करना है। सब कुछ दूसरोंके लिये ही करना है। पंचकोश कहनेका तात्पर्य यही है कि यह प्रकृतिका है, हमारा नहीं है। जप, तप, ध्यान, समाधि आदि भी अपने लिये नहीं हैं। तीनों शरीर मेरे लिये नहीं है, फिर उनसे किये गये जप, तप आदि मेरे लिये कैसे हुए?

श्रोता—भजन क्या है?

स्वामीजी—जैसे बच्चा माँके बिना, प्यासा पानीके बिना रह नहीं सकता, ऐसे ही भगवान्‌के बिना रह न सके—इसका नाम भजन है।

जैसे करोड़पतिका लड़का पितासे दस-पंद्रह हजार रुपये माँगता है तो वह अलग होना चाहता है, ऐसे ही **भगवान्‌से कुछ माँगना उनसे अलग होना है।**

भगवान् ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिको, साधु-संन्यासीको नहीं मिलते, प्रत्युत 'भक्त'को मिलते हैं। बालक माँपर अधिकार अपनेपनसे करता है, तपस्या, सामर्थ्य, योग्यतासे नहीं। **तपस्यासे प्रेम नहीं मिलता, शक्ति मिलती है।**

वर्ण और आश्रम मर्यादा रखनेके लिये हैं, अभिमान करनेके लिये नहीं।

××× ××× ××× ×××

निष्काम होनेसे मनुष्य मुक्त, भक्त सब हो जाता है। भगवान्‌के साथ सम्बन्ध मानें तो कामना नहीं रहेगी। भगवान्‌से भी बढ़कर संसार हमें कुछ दे सकता है क्या?

जबतक संसारमें आसक्ति है, तबतक भगवान्‌में असली प्रेम नहीं है।

आप भगवान्‌के किसी मनचाहे रूपको मान लो और भगवान्‌के मनचाहे आप बन जाओ।

××× ××× ××× ×××

तत्त्वज्ञान होनेके बाद दास्य, सख्य आदि भाव होते हैं। ये भाव चिन्मयके साथ होते हैं, जड़के साथ नहीं। जड़में दास्य, सख्य आदि भाव होनेसे कल्याण नहीं होता।

संसारका ज्ञान होनेसे ही वैराग्य होगा। जैसे गायके शरीरमें रहनेवाला घी काम नहीं देता, ऐसे ही सीखा हुआ ज्ञान काम नहीं देता।

पहले विवेकका आदर करो, फिर ज्ञान, भक्ति सब हो जायँगे। अविवेकको दूर करनेका नाम विवेक है। अज्ञानको दूर करनेका नाम ज्ञान है। शरीर 'मैं' और 'मेरा' है—यह अविवेक है। शरीरके साथ मैं-मेरेका सम्बन्ध विवेक-विरोधी सम्बन्ध है। सम्बन्ध जोड़ना अथवा तोड़ना वर्तमानकी वस्तु है और इसमें कोई असमर्थ और पराधीन नहीं है।

××× ××× ××× ×××

आप कैसे ही हों, अभी इसी क्षण मान लें कि मैं भगवान्‌का हूँ। यह भक्ति है। इसमें जड़ता नहीं है। जबतक सुख-आराम, मान-बड़ाई आदिकी चाहना रहेगी, तबतक जड़ता

रहेगी। अतः *'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'*—ऐसा मान लें तो जो भक्ति अंतमें है, वह अभी हो जायगी। सख्य, दास्य आदि भाव भी अभी हो सकते हैं।

गीतासे मेरा सर्वप्रथम परिचय सं० १९७२ में (बारह वर्षकी अवस्थामें) हुआ था। गीताके विषयमें कोई मुझे सिखा दे, ऐसा न कोई व्यक्ति मिला, न कोई गीताकी टीका मिली! गीताके विषयमें मैं अपनेको अनजान भी नहीं मानता और पूर्ण जानकार भी नहीं मानता; क्योंकि पूर्ण जानकार मान लेनेसे आगे उन्नति रुक जायगी। इसलिये मुझे अब भी गीतामें नयी-नयी बातें मिलती हैं।

जो थोड़ेमें ही सन्तोष कर लेते हैं और अपनेको पूर्ण मान लेते हैं, वे वास्तविक तत्त्वतक कैसे पहुँच सकते हैं? सन्तोष प्रारब्धमें करना चाहिये, नये कर्म अथवा साधनमें कभी नहीं। **अल्पमें सन्तोष मत करो। जीवन्मुक्त मत बनो।**

××× ××× ××× ×××

जिस विषयमें कुछ जानते हैं, वहाँ 'विवेक' लगता है। जिस विषयमें कुछ भी नहीं जानते, वहाँ 'श्रद्धा' लगती है। शरीर बदल गया, पर मैं वही हूँ—इसमें विवेक काम करेगा। शरीरके साथ सम्बन्ध मानना अविवेक है। अविवेकपूर्वक जोड़ा गया सम्बन्ध तत्काल मिटता है। **अविवेकको मिटाये बिना साधन शुरू ही नहीं होगा।** अविवेकको मिटानेसे तत्काल सिद्धि होती है। विवेकका आदर न करनेका नाम 'अविवेक' है। **विवेकका आदर करनेसे सभी साधन सुगम हो जायँगे।**

भगवान् मेरे हैं—यह श्रद्धा है। भक्ति श्रद्धाप्रधान है। तात्पर्य है कि भक्तिमें विवेक होते हुए भी श्रद्धाकी प्रधानता है। कोई भी साधन विवेकके बिना नहीं है। विवेक तत्काल होता है, इसका टुकड़ा नहीं होता।

भगवान्‌में श्रद्धा करो और संसारका त्याग करनेमें विवेक लगाओ।

××× ××× ××× ×××

परमात्मप्राप्तिकी अभिलाषा कम है, इसलिये यह कठिन दीख रही है। विचार करनेसे कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनों सुगम दीखते हैं। गीतामें कर्मयोग और भक्तियोगको ज्ञानयोगकी अपेक्षा सुगम बताया है। रामायणमें ज्ञानको समझना सुगम और भक्तिका मार्ग सुगम बताया है*, तथा ज्ञानका मार्ग कठिन और भक्ति को समझना कठिन बताया है†।

शालिग्राम भगवान् हैं—यह समझना बड़ा कठिन है, पर श्रद्धा-विश्वास कर सकते हैं। अतः भक्तिमें समझना कठिन है, पर श्रद्धा-विश्वास करना सुगम है।

ज्ञानयोगमें पहले देहाभिमानका त्याग करना है। जीव, जगत् और ब्रह्मको बुद्धिका विषय बनायेंगे तो ज्ञानयोग कभी सिद्ध नहीं होगा।

प्रत्येक साधकके लिये खास बाधा है—सुख-लोलुपता। सुखासक्तिका त्याग किये बिना प्रत्येक साधन कठिन पड़ेगा।

---

* 'निर्गुन रूप सुलभ अति' (मानस, उत्तर० ७३ ख)
'कहहु भगति पथ कवन प्रयासा' (मानस, उत्तर० ४६।१)

† 'ग्यान पंथ कृपान कै धारा' (मानस, उत्तर० ११९।१)
'सगुन जान नहिं कोइ' (मानस, उत्तर० ७३ ख)

कल्याण सुगमतासे, शीघ्र और हरेकका हो जाय—इसका मैं पक्षपाती हूँ, साधन चाहे कोई भी हो!

गीतामें सांख्ययोगसे कर्मयोगको श्रेष्ठ बताया है—'**तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते**' (गीता ५। २), और कर्मयोगसे भक्तियोगको श्रेष्ठ बताया है—'**श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः**' (गीता ६। ४७)। ज्ञानयोग तथा कर्मयोग लौकिक हैं, भक्तियोग अलौकिक है। ज्ञान कठोर है, भक्ति बहुत कोमल है!

भगवान् कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९। ३०)

'अगर कोई दुराचारी-से-दुराचारी भी अनन्यभक्त होकर मेरा भजन करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिये। कारण कि उसने निश्चय बहुत अच्छी तरह कर लिया है।'

'**अनन्यभाक्**' का अर्थ है—अनन्य आश्रय। पतिव्रताकी तरह एकका ही आश्रय हो—***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'।*** '**साधुरेव स मन्तव्यः**'—यह प्रभुसम्मत वाक्य है। अब एक परमात्माको ही प्राप्त करना है—यह '**सम्यग्व्यवसितो हि सः**' है।

××× ××× ××× ×××

श्रवण, मनन आदि 'पिपीलिका मार्ग' है और सत्संग 'विहंगम मार्ग' है। सत्संगसे तत्काल सिद्धि होती है। **जो एकान्तमें बैठकर भजन करनेकी बात कहते हैं, वे न सत्संगके**

तत्त्वको जानते हैं, न भजनके तत्त्वको। वे ऐसा कहकर दूसरेका बड़ा भारी अहित करते हैं।

दूसरेको सुख देनेसे अपनी सुखलोलुपता मिटती है। अपने सुखके लिये कुछ भी करना आसुरी वृत्ति है। यह सुखलोलुपता बड़ी भारी बाधा है। जबतक यह है, तबतक कल्याण नहीं होगा। **सुखलोलुपताकी डोरी बँधी रहेगी तो रातभर नाव खेते रहो, भजन-ध्यान करते रहो, पर वहीं-के-वहीं रहोगे।** सुखलोलुपतासे नुकसान किसी तरहका बाकी नहीं, लाभ कोई नहीं।

××× ××× ××× ×××

जैसे दाहिका और प्रकाशिका—दोनों शक्तियाँ अग्निसे अलग नहीं रह सकतीं, ऐसे ही क्षर (अपरा) और अक्षर (परा)—दोनों शक्तियाँ परमात्मासे अलग नहीं रह सकतीं। शक्ति शक्तिमान्‌के बिना नहीं रह सकती, पर शक्तिके बिना शक्तिमान् रह सकता है। शक्ति स्वतन्त्र नहीं रह सकती। शक्तिमान्‌की स्वतन्त्र सत्ता है। शक्तियों (क्षर और अक्षर)-के बिना परमात्मा रह सकते हैं, इसलिये भगवान्‌ने अपनेको क्षर-अक्षर दोनोंसे अन्य बताया है—**'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः'** (गीता १५। १७)।

परमात्माके टुकड़े नहीं होते। प्रकृतिके अंशको पकड़नेसे जीव अंश हुआ है—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५। ७)। जैसे धनी भी आदमी है, गरीब भी आदमी है। धनको स्वीकार करनेसे वह धनी कहलाता है, धनको स्वीकार न करे तो वह आदमी तो है ही। ऐसे ही **प्रकृतिके अंशको पकड़नेसे जीव है, न पकड़े तो साक्षात् ब्रह्म है।**

चेला बनानेवाले बड़ा अपराध करते हैं कि चेलेकी पूर्ति (कल्याण) तो कर सकते नहीं और चेलेको अटका देते हैं—कहीं जाने देते नहीं।

××× ××× ××× ×××

सबके अनुभवकी बात है कि संसारमें सन्तोष नहीं होता, तृप्ति नहीं होती। बड़े-से-बड़े धनी आदिको देख लो, कोई भी सन्तुष्ट नहीं है। **संसारमें जो मिला है, वह नमूना है। उसमें सन्तोष नहीं हुआ तो त्रिलोकीकी वस्तुएँ मिलनेपर भी सन्तोष होगा नहीं।** सब-के-सब व्यक्ति-पदार्थ मिलकर एक व्यक्तिको भी सन्तुष्ट नहीं कर सकते। कारण कि **सब वस्तुएँ शरीरतक पहुँचती हैं, आपतक नहीं पहुँचतीं।** इसलिये इनसे ऊँचा उठना है। शान्ति प्रकृतिसे अतीत तत्त्वमें है।

हम भोगोंका त्याग तो कर सकते हैं, पर परमात्माका त्याग कर सकते ही नहीं। भर्तृहरिजीने भोगोंका त्याग कर दिया और फिर भगवान्‌में ही लग गये, उनको नहीं छोड़ा।

××× ××× ××× ×××

अनेक जगह सत्ता माननेसे मन एक जगह नहीं लग सकता। यदि मनमें अनेक सत्ताका भाव न होकर एक परमात्मसत्ता ही रह जाय तो फिर मन कहाँ जायगा? क्यों जायगा?

जैसे शरीर बदलता है, हम वही हैं, ऐसे ही संसार बदलता है, परमात्मा वही हैं। जो बदलता है, उसकी सत्ता विद्यमान नहीं है। बदलनेवालेसे ममता करनेवाला कभी सुखी नहीं हो सकता। **परिवर्तन यह कहता है कि मेरेपर विश्वास**

मत करो। संसारमें परिवर्तन जरूरी है। परिवर्तन न हो तो संसार तस्वीर हो जायगा। जो हरदम नहीं रहता, वह आपका नहीं है। चाहे उसे कायम रख लो, चाहे अपना मत मानो।

××× ××× ××× ×××

मुक्तिमें भेद है, पर प्रेममें कोई मतभेद नहीं है। दार्शनिक एकता नहीं होती, प्रत्युत प्रेमकी एकता होती है। संसारमें ममता होती है, भगवान्‌में आत्मीयता होती है। प्रेममें सब एक हो जाते हैं, कोई मतभेद नहीं रहता।

वास्तवमें मतभेद दोषी नहीं है, राग-द्वेष दोषी हैं।

ज्ञानमें आप हमारा निरादर कर सकते हैं, पर प्रेममें निरादर नहीं कर सकते। प्रेममें खटपट नहीं होती।

××× ××× ××× ×××

संसारका आकर्षण भगवत्प्राप्तिमें बहुत बाधक है। भोग और संग्रह—ये दो खास बाधाएँ हैं। आरम्भसे ही प्रभु-कृपाका आश्रय लेकर साधन करो। परमात्माकी प्राप्ति परिश्रम, उद्योग करनेसे नहीं होती। परमात्मप्राप्तिमें क्रिया और पदार्थ हेतु नहीं हैं, प्रत्युत भाव, प्रेम और शरणागति हेतु है। परमात्माकी प्राप्ति किसी मूल्यसे नहीं होती, प्रत्युत समर्पणसे, विश्वाससे होती है। **भगवच्चरणोंकी शरण लें और पुकार करें तो प्राप्ति हो जायगी, अन्य किसी साधनकी जरूरत नहीं।** बच्चा केवल रोकर सबपर अधिकार कर लेता है। भीतरकी पुकार, लगन, उत्कण्ठा, आतुरता भगवान्‌को पकड़ लेती है। इसे पहले ही पैदा कर लो, अन्यथा प्राप्तिमें देरी लगेगी। पुकारसे भगवान् पिघल जाते

हैं। आश्रय और लालसा—इन दो चीजोंकी जरूरत है। संयोगजन्य सुखकी आसक्ति खास बाधा है। इस रस्सीको खोले बिना नौका आगे बढ़ेगी नहीं।

भगवान् कल्पवृक्ष हैं। **जो शरीरको चाहता है, उसे भगवान् नया-नया शरीर देते रहते हैं।** परमात्माकी प्राप्ति चाहते हो तो भोगासक्तिको मिटाओ। न मिटा सको तो भगवान्‌को पुकारो।

××× ××× ××× ×××

अपनी सामर्थ्य, समय, समझ और सामग्री पूरी लगा दो। **पूरा बल लगानेपर भी काम न बने, तब भगवान् सहायता करेंगे।** वस्तु अभावग्रस्तको दी जाती है। जिसके पास वस्तु है, उसे कौन देना चाहेगा? अपने बलसे कामादि दोष दूर न हों, तब भगवान्‌को पुकारो, उनके आगे रोओ। भगवान् निर्बलकी सहायता करते हैं—**'सुने री मैंने निरबलके बल राम'। अपनी शक्ति लगाये बिना भगवान् कैसे दया करेंगे?** आपका उद्देश्य काम-क्रोधादिको दूर करनेका होना चाहिये। काम-क्रोधादि दोष सुहाये नहीं। उनसे सुख लेते रहोगे तो वे दूर नहीं होंगे। आपसे दूर न हों, तब प्रार्थना करो और प्रार्थना करके चिन्ता छोड़ दो। फिर जब ये दोष आयें, तब भगवान्‌से कह दो कि 'यह देखो नाथ, काम आ गया!' शरणागतिकी कसौटी है—सब चिन्ताएँ मिट जायँ।

जो अपने लिये सब कर्म करता है, वह राक्षस होता है। उसकी भगवान् मदद कैसे करेंगे?

धन कमानेमें तो घाटा भी लग सकता है, पर भगवद्भजनमें घाटा लगता ही नहीं।

मन लगे चाहे न लगे, नामजपको मत छोड़ो। नाममें इतनी शक्ति है कि मन भी लगा देगा। कोई पूछे तो कह दो, आपको पूछना हो तो कह दो और बिना पूछे कुछ कहनेकी मनमें आये तो कह दो—इन तीनोंके सिवाय कुछ मत बोलो और नामजप करते रहो। यह **आप करो तो मैं यह मान लूँगा कि आपने मेरा आदर कर दिया, मेरी पूजा कर दी, मुझे भेंट दे दी!**

××× ××× ××× ×××

भगवान्‌ने कल्याणके लिये मनुष्यशरीर दिया है तो कल्याणके लिये योग्यता भी दी है। अतः **यहाँ कल्याणके लिये योग्यता सम्पादन करनेकी जरूरत नहीं है, प्रत्युत प्राप्त योग्यताका सदुपयोग करनेकी जरूरत है।** नया सीखनेकी इतनी जरूरत नहीं है। जो मिला है, उसका सदुपयोग करना है।

महिमा मनुष्यशरीरकी नहीं, प्रत्युत विवेककी है। रामायणमें आया है—

नर तन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥
नरक स्वर्ग अपबर्ग निसेनी। ग्यान बिराग भगति सुभ देनी॥

(मानस, उत्तर० १२१।५)

विवेकका सदुपयोग करनेसे ज्ञान, वैराग्य, भक्ति—तीनों प्राप्त होते हैं। विवेकका दुरुपयोग करनेसे नरक प्राप्त होते हैं।

जो आप अपने लिये नहीं चाहते, वह दूसरोंके प्रति मत करो। यह बुद्धि भगवान्‌ने सबको दी है। **हम तो झूठ बोलें, पर दूसरा हमसे झूठ न बोले—यह विवेकका दुरुपयोग है।**

××× ××× ××× ×××

साधकोंके लिये सबसे पहले विवेककी आवश्यकता। शरीर और शरीरीको अलग-अलग जानना विवेक है। यह विवेक हमें है, पर हम इसका आदर नहीं करते। विवेक होता नहीं है, विवेक तो है। केवल उसकी तरफ लक्ष्य करना है, उसको महत्त्व देना है। गीताका आरम्भ भी शरीर-शरीरीके विवेकसे हुआ है। इसीको महत्त्व देना है, स्वीकार करना है, इसपर दृढ़ रहना है।

शरीरका सम्बन्ध अविवेकजन्य है। शरीर मैं नहीं हूँ, शरीर मेरा नहीं है और शरीर मेरे लिये नहीं है—ऐसा अनुभव करना है। इसका ठीक अनुभव होनेको तत्त्वज्ञान कहते हैं। शरीरके साथ भूलसे माने हुए सम्बन्धको मिटाना ही सत्संग है। विवेकमें अभ्यास नहीं होता, प्रत्युत विचार होता है।

××× ××× ××× ×××

मेरी मान्यतामें गोस्वामी तुलसीदासजी एक स्मृतिकार 'ऋषि' थे। उनकी रचनाओंका प्रमाण माना जाता है। उनकी कवितामें बड़ी विलक्षणता है। **भगवान्‌का चरित्र और भक्तकी वाणी होनेसे रामायण बहुत विलक्षण ग्रन्थ है।** यह भगवान्‌की कृपासे निकली हुई वाणी है। भविष्यमें संस्कृत जाननेवाले बहुत कम रह जायँगे, इसलिये भगवान् शंकरने हिन्दीमें रामायणकी रचना करनेकी आज्ञा दी।

गीता और रामायण दोनों ग्रन्थ मुझे बहुत प्रिय लगते हैं। दो ही मुख्य भाषाएँ हैं—संस्कृत और हिन्दी। दोकी ही वाणी मुख्य है—भगवान्‌की वाणी और भक्तकी वाणी। रामचरितमानसकी रचना मुझे बड़ी विलक्षण लगती है। इसे सुननेमें मेरी रुचि रहती है।

गोस्वामीजीने अयोध्याकाण्ड पहले लिखा है। अयोध्याकाण्डकी रचनामें वे नियमसे चले हैं; क्योंकि भरतजी भी नियम (मर्यादा)-से चलते हैं। वे सभी काण्ड दोहेसे शुरू करते हैं, पर सुन्दरकाण्ड चौपाईसे शुरू करते हैं; क्योंकि दोहा विश्राम होता है। हनुमान्‌जी विश्राम नहीं करते—**'राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ बिश्राम'** (मानस, सुन्दर० १), इसलिये गोस्वामीजीने सोचा कि जब हनुमान्‌जी विश्राम नहीं करते तो मैं विश्राम क्यों करूँ?

रामायण गृहस्थोंके लिये विशेष कामकी है। किसको कैसा आचरण करना चाहिये—यह शिक्षा रामायणसे मिलती है। रामायणमें बहुत शिक्षाएँ भरी हुई हैं। रामायण सब रीतियोंसे विलक्षण है!

प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना॥
राम चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजइ न पासू॥

(मानस, बाल० १७।२)

भरतजीका मनरूपी भ्रमर रामजीके चरणकमलोंपर मँडराता है, इसलिये भरतजीके चरणोंको कमलकी उपमा नहीं दी। यदि भरतजीके चरणोंको कमलकी उपमा दें तो मनरूपी भ्रमर वहीं रहे, रामजीके चरणोंमें क्यों जाय? ऐसे ही ब्रह्माजीके चरणोंको भी कमलकी उपमा नहीं दी; क्योंकि वे कमलसे उत्पन्न हुए!

××× ××× ××× ×××

संसारसे मैं-मेरेका सम्बन्ध माना हुआ है। हमारा वास्तविक सम्बन्ध परमात्माके साथ है। ***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो***

न कोई'—इस प्रकार भगवान्‌के साथ अनन्य सम्बन्ध होनेपर ही असली भक्ति होती है। **दूसरा मेरा है—यही भक्तिमें बाधक है; क्योंकि यह अनन्यता नहीं होने देता।** भगवान् अनन्यभक्तके लिये सुलभ हैं—**'तस्याहं सुलभः पार्थ'** (गीता ८।१४)।

संसार मेरा है—यह भाव बाधक है। इसे कैसे छोड़ें? ये सब सेवा करनेके लिये मेरे हैं, लेनेके लिये कोई मेरा नहीं है—यह दृढ़तासे मान लें। सेवा लेनेसे ही आप बँधे हैं। सेवा करनेसे कर्जा उतर जायगा।

××× ××× ××× ×××

मनुष्यशरीर बहुत दुर्लभ है, पर मिल गया, इसलिये दुर्लभताका पता नहीं चलता। मनुष्यशरीर किसलिये मिला है? हमें क्या करना है? इस तरफ ध्यान देनेकी बड़ी आवश्यकता है। यह अन्य योनियोंकी तरह नहीं है। यह इसलिये मिला है कि हम सदाके लिये दुःखोंसे छूट जायँ। परम आनन्द प्राप्त करनेके लिये मानवशरीर मिला है। कुछ करना, जानना और पाना बाकी न रहे—इसके लिये मानवशरीर मिला है। **भारत एक विलक्षण देश है। भारतमें जन्म कल्याणके लिये ही होता है।**

××× ××× ××× ×××

हम यहाँ आये हैं और जानेवाले हैं—यह मान लें। यह बहुत दामी बात है। कोई जन्म करके आ गया, कोई ब्याह करके आ गयी! इस बातका जप नहीं करना है, इसे बार-बार याद नहीं करना है। यह स्वीकृति है। इस बातकी हर समय जागृति रहनी चाहिये।

किसीके मरनेका दुःख होता है तो वास्तवमें ऋणका ही दुःख होता है। **जिससे जितना सुख लिया है, उतना सुख दिया नहीं और जिससे सुखकी आशा है, उसके मरनेसे ही दुःख होता है।** सभी दुःख स्वार्थमें ही भरे हैं।

××× ××× ××× ×××

ईश्वर कर्म नहीं करवाता, प्रत्युत फल भुगवाता है। मनुष्य कर्म स्वतन्त्रतासे करता है, फल परतन्त्रतासे भोगता है। काम करते हैं अपनी मरजीसे, फल भोगते हैं दूसरेकी मरजीसे। शुभकर्मका फल सब चाहते हैं, अशुभकर्मका फल कोई नहीं चाहता। इसलिये ईश्वर सबके हृदयमें रहकर फल भुगताते हैं—'**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया॥**' (गीता १८।६१)। अगर ऐसा मानें कि भगवान् ही कर्म करवाते हैं तो फिर शास्त्र, गुरु और शिक्षा सब निरर्थक हो जायँगे। मनुष्यमें मनुष्यपना नहीं रहेगा, वह पशु-पक्षियोंकी तरह परतन्त्र हो जायगा। जैसे कानून अपनेसे विरुद्ध कर्म करनेकी आज्ञा नहीं देता, ऐसे भगवान् अपनेसे विरुद्ध कर्म कैसे करवायेंगे? क्या सरकार बैंकमें चोरी करनेवालेकी सहायता करती है? सरकार तो रुपया जमा करवानेवालेकी ही सहायता करती है।

××× ××× ××× ×××

परमात्मा भी वर्तमान हैं, आप भी वर्तमान हैं, केवल इच्छाकी कमी है! परमात्माकी तरफ चलनेवालेके पास बैठनेसे शान्ति मिलती है—यह परमात्माके होनेमें प्रत्यक्ष प्रमाण है।

जैसे भगवान् नित्य हैं, ऐसे उनकी कृपा, सुहृत्ता आदि

गुण भी नित्य हैं। **भगवान्‌के बनाये हुए नियमों (न्याय)-में भी कृपा भरी हुई है।** गीतामें आया है—'**मामनुस्मर युध्य च**' (८।७) 'मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर'। यहाँ शंका होती है कि मन भगवान्‌में लगायेंगे तो युद्ध कैसे होगा? युद्धमें तो बड़ी सावधानी रखनी पड़ती है, नहीं तो गला कट जाय! युद्ध सब समय नहीं होता, पर स्मरण सब समय कर सकते हैं। अतः यहाँ स्मरण करनेका तात्पर्य है कि कामको अपना न मानकर भगवान्‌का मानकर करे। **भगवान्‌के लिये करनेसे प्रत्येक क्रिया 'पूजा' हो जायगी।** भगवान्‌का काम माननेसे काम करते समय विशेष सावधानी रहेगी।

भगवान्‌का प्रत्येक विधान कृपापूर्ण ही होता है। परम सुहृद् भगवान्‌के द्वारा हमारा अहित कैसे होगा? **भगवान्‌की कृपामें हित और प्यार दोनों होते हैं।**

××× ××× ××× ×××

मृत्यु सब जगह और सब समय खुली है। अतः जो काम आवश्यक हो, उसे जल्दी कर लो। परमात्माकी प्राप्ति आवश्यक काम है, जो खुद ही कर सकते हैं। यह काम भोजन करने और दवा लेनेकी तरह खुद ही कर सकते हैं, दूसरा नहीं। यह काम केवल बूढ़ोंके लिये ही नहीं है। यह बालकपनेसे ही करनेका काम है। **भजन, सत्संग करनेकी कोई अवस्था नहीं होती।**

××× ××× ××× ×××

परमात्मप्राप्ति, तत्त्वज्ञान, कल्याण जितना सुगम है, उतना संसारका काम भी सुगम नहीं है! परमात्मासे अलग किसीकी

भी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है—'**मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति**' (गीता ७।७), '**मत्त एवेति तान्विद्धि**' (गीता ७।१२)। सब कुछ परमात्माका ही स्वरूप है। भगवान् ही चौरासी लाख रूपोंसे प्रकट हुए हैं। भगवान्‌के सिवाय दूसरा आये कहाँसे? **संसार नींदमें, बेहोशीमें दीखता है। आँख खुलते ही भगवान् दीखने लग जायँगे।** गहने बननेपर क्या सोना नहीं रहता? बर्तन बननेपर क्या मिट्टी नहीं रहती? भगवान् ही संसारमें अनेक रूपोंसे प्रकट हुए हैं। जब 'सब भगवान्‌के ही रूप हैं'—ऐसा देखेंगे तो कौन क्रोध करेगा? किसपर करेगा? कैसे करेगा? सब दोष मिट जायँगे।

××× ××× ××× ×××

गुरु बनानेसे उद्धार नहीं होता। अन्य सम्बन्धोंकी तरह यह भी एक सम्बन्ध है। श्रीशरणानन्दजी महाराजने कहा था कि जो मेरेसे अधिक जानता है, वह मेरा गुरु है और जो मेरेसे कम जानता है, वह मेरा चेला है! एकलव्यने गुरु बनाया नहीं, पर धनुर्विद्यामें अर्जुनसे भी तेज हो गया! **विद्या लेनेमें चेलेकी मुख्यता है, जायदाद लेनेमें गुरुकी मुख्यता है।**

वास्तवमें गुरु बनाया नहीं जाता, प्रत्युत गुरु बन जाता है। जिससे ज्ञान-प्रकाश मिले, वही गुरु है। दत्तात्रेयजीने चौबीस गुरु बनाये, पर उन गुरुओंको मालूम ही नहीं कि हमारा कोई शिष्य है! पिंगलाके गुरु दत्तात्रेय बन गये और दत्तात्रेयकी गुरु पिंगला बन गयी, पर दोनोंको एक-दूसरेका पता ही नहीं! गुरु पराधीन होता है, चेला स्वाधीन!

भगवच्चरणोंके शरण होनेपर सब कुछ मिल जाता है।

'वासुदेवः सर्वम्' माननेवालेके लिये क्या गुरुकी आवश्यकता रहेगी?

××× ××× ××× ×××

ज्ञानमार्गमें विवेक मुख्य है। विवेक हरेक साधनमें आवश्यक है। इसलिये भगवान्‌ने गीताका आरम्भ विवेकसे ही किया है। भगवान्‌ने विवेकी पुरुषको 'पण्डित' कहा है— **'नानुशोचन्ति पण्डिताः'** (गीता २।११)। **जहाँ ममता होती है, वहाँ बुद्धि काम नहीं करती।** इसलिये डॉक्टरके घर कोई बीमार हो जाय तो दूसरे डॉक्टरको बुलाते हैं। काम-क्रोधादिसे भी बुद्धि नष्ट होती है। चिन्तासे भी बुद्धि नष्ट होती है— **'बुद्धिः शोकेन नश्यति'। सच्छास्त्र, सत्संग, सद्विचारसे विवेक बढ़ता है और शोक-चिन्ता मिटते हैं।**

माँको बालककी जितनी चिन्ता रहती है, उतनी बालकको नहीं। ऐसे ही असली गुरुको शिष्यकी जितनी चिन्ता रहती है, उतनी शिष्यको नहीं। अतः **गुरुकी चिन्ता मत करो, गुरु अपने-आप आयेगा।**

मनके अनुकूल परिस्थिति न होनेसे बाहरसे उच्चाटन होता है! काम-क्रोधादिसे भीतरसे उच्चाटन होता है।

पैसोंसे सत्संग नहीं होता, प्रत्युत कुसंग होता है।

××× ××× ××× ×××

जो जितने बड़े धनी हैं, वे उतने ही बड़े दरिद्र, मँगते हैं। धनियोंको लाखों-करोड़ों रुपयोंका घाटा होता है, पर गरीबको कभी घाटा होता ही नहीं।

रुपये काम नहीं आते, वस्तुएँ काम आती हैं। रुपयोंका

खर्च बढ़िया है, रुपये नहीं। यदि खर्चा न करो तो रुपयोंमें और कंकड़-पत्थरोंमें क्या फर्क है? कम-से-कम एक जगह तो खुली रखो, जहाँ कृपणता न रखकर खुला खर्च करो।

लोभ दो काम करता है—अन्यायपूर्वक कमाना और खर्चमें कंजूसी करना, आवश्यक खर्च न करना। **लोभ नहीं हो तो रुपया सुख नहीं दे सकता।**

××× ××× ××× ×××

भगवान् हैं—इस बातको दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर लें। भगवान्का प्रह्लादजीके साथ जैसा सम्बन्ध था, वैसा ही हमारे साथ भी है। भगवान्को सदा अपने साथ मानें, फिर कोई भय नहीं—***'बाल न बाँका कर सके जो जग बैरी होय'।*** ऐसा भाव रखें कि भगवान् सब जगह होते हुए भी भगवान् विशेषतासे मेरे साथ हैं; क्योंकि मैं नाम जपता हूँ!

××× ××× ××× ×××

अपनी जगह स्त्री और पुरुष दोनों श्रेष्ठ हैं। जैसे, घड़ीका प्रत्येक पुर्जा अपनी जगह श्रेष्ठ है। दो जगह समान पहिये होनेसे रथ चलता है, पर पहिये अपनी जगह होने चाहिये। यदि दोनों पहिये एक जगह कर दें तो क्या रथ चलेगा? सेवा करनेकी ताकत जितनी स्त्रीमें होती है, उतनी पुरुषमें नहीं। स्त्रीमें पालन-पोषणकी विशेष शक्ति है। **जो भी अपने कर्तव्यका पालन करेगा, वह श्रेष्ठ हो जायगा।**

जो अपने कहनेमें न चले, उसे बेटा मत मानो। शरीरसे जूँ भी पैदा होती है, ऐसे ही वह भी पैदा हो गया! जूँको क्या बेटा मानते हो?

स्वभाव बिगड़ेगा तो कोई अपना नहीं होगा। स्वभाव सुधरेगा तो दुनिया अपनी हो जायगी।

खुद अपने कर्तव्यका पालन नहीं करते और दूसरोंको कर्तव्य सिखाते हैं, फिर सीखेगा कौन? कर्तव्य अपना होता है, अधिकार दूसरेका।

××× ××× ××× ×××

रामायण-पाठका आनन्द भगवान्‌की कृपासे ही मिलता है। सांसारिक सुख पारमार्थिक सुखकी बराबरी नहीं कर सकता। जिस जगह रामायण-पाठ होता है, वह जगह तीर्थ बन जाती है। आप अपने-अपने घरोंमें भी रामायणका नवाह अथवा मासिक पाठ करें। कम-से-कम नौ दोहोंका पाठ अवश्य प्रतिदिन करें। नवरात्रके समय नवाह पाठ करें।

भगवान्‌की कृपा सबपर समान है, पर जो उनके सम्मुख हो जाता है, उसपर विशेष कृपा होती है। सामूहिक रामायण-पाठ जैसे उत्सव भगवान्‌की सम्मुखताके लिये ही होते हैं। यह 'अन्नप्राशन'-संस्कार है! इसमें भगवान् पारमार्थिक सुखका स्वाद चखाते हैं। यह सदाके लिये अमर बनानेवाला अमृत है।

××× ××× ××× ×××

हृदयसे ऐसा मान लें कि हम भगवान्‌के हैं। इस बातको आप दृढ़तासे पकड़ लें। ऐसा मानें कि अब हम अपने घरपर आ गये! अब भटकना समाप्त हो गया! हम शरीर, संसार, वर्ण, आश्रम, कुटुम्ब आदिके बने हुए हैं, उनके हैं नहीं। उनकी सेवा कर दो। हम तो भगवान्‌के ही हैं और भगवान् ही हमारे हैं। अब हम भगवानके हो गये, अपने घरमें आ गये। अब चिन्ता किस बातकी?

'अमरापुर म्हारो सासरो, पीहर सन्ता पास'! हमारा घर भगवान् हैं। हम यहाँ रहनेवाले नहीं हैं। हमें तो अपने घर जाना है। यह सच्ची बात है। नयी बात नहीं है।

हर समय यह भाव रहे कि हम तो भगवान्‌के घरमें हैं। सब संसार भगवान्‌का है। हम भगवान्‌के हैं। वास्तवमें भगवान् ही संसाररूपसे प्रकट हुए हैं। **'सब जग ईस्वररूप है, भलो बुरो नहिं कोय'—ऐसा भाव हो जाय तो यह शिकायत मिट जायगी कि मन भगवान्‌में लगता नहीं!**

××× ××× ××× ×××

जो अपने सुखके लिये अनेक वस्तुओंकी इच्छा करता है, उसको वस्तुओंके अभावका दुःख भोगना ही पड़ेगा। उसका अभाव कभी मिटेगा नहीं।

जैसे भूखके बिना भोजनसे सुख नहीं मिलता, ऐसे ही दुःखी हुए बिना संसारका सुख भोग सकते ही नहीं। दुःखी व्यक्तिको ही सुख मिलता है और सुखभोगका परिणाम भी दुःख ही है। अतः संयोगजन्य भोगोंके आदिमें भी दुःख है और अन्तमें भी दुःख है। गीतामें आया है—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५।२२)

'हे कुन्तीनन्दन! जो इन्द्रियों और विषयोंके संयोगसे पैदा होनेवाले भोग (सुख) हैं, वे आदि-अन्तवाले और दुःखके ही कारण हैं। अतः विवेकशील मनुष्य उनमें रमण नहीं करता।'

××× ××× ××× ×××

अभी भगवान्‌के मनमें देनेकी आयी है! भगवान् विशेष कृपा कर रहे हैं! यदि इस समय हम उनके सम्मुख हो जायँ तो बहुत लाभ होगा। अत: तत्परतासे भगवान्‌में लग जायँ।

भगवान्‌का आश्रय लेनेसे समग्रका ज्ञान होता है। मुक्ति होनेपर भी दार्शनिकोंमें अलगाव रहता है। यह अलगावपना भी मिट जाय—ऐसी बात गीता कहती है।

अन्तिम लक्ष्य प्रेम है, ज्ञान नहीं। प्रेम अन्तिम तत्त्व है। ज्ञानमें अलगाव रहता है। एकता प्रेममें होती है। प्रेममें सब एक हो जाते हैं। जैसे शरीरके सभी अंग मिलकर शरीर है, ऐसे ही सब मिलकर परमात्मा हैं। अपने शरीरके सभी अंगोंमें प्रियता होती है। **ठीक-बेठीकका भेद ज्ञानमें रहता है।** प्रेममें ***'निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध'?***

××× ××× ××× ×××

अभी भगवान् विशेष कृपा करके देना चाहते हैं। कारण कि अपने-आप नयी-नयी बातें भीतरमें पैदा होती हैं। इसमें अपना कोई बल, उद्योग नहीं है। कमजोर बालकका माँ विशेष ध्यान रखती है। इसी तरह हम भी कलियुगमें बहुत कमजोर हो गये हैं; अत: भगवान् हमारा विशेष ध्यान रखते हैं—***'निरबल के बल राम'।*** ऐसे सत्संग-आयोजनोंमें भी निमित्त तो कई बन जाते हैं, पर वास्तवमें भगवान्‌की विशेष कृपा है। दुकानदार जब मालकी बिक्री करना चाहता है, तब माल सस्ता और सुगमतासे मिल जाता है। इसी तरह भगवान् अभी माल लुटाना चाहते हैं!

यह शिकायत रहती है कि मन नहीं लगता। इस विषयमें तीन बातें याद रखें। पहली बात, संकल्पका सुख न लें। पुराना चिन्तन आये तो सुख लेनेसे पुराना विषय-चिन्तन नया हो जाता है। दूसरी बात, उसको मिटानेकी चेष्टा न करें। मिटानेकी चेष्टा करना भी उसको पुष्ट करना है। कारण कि पहले उसे कायम करते हैं, तभी तो मिटानेकी चेष्टा करते हैं। तीसरी बात, मूलमें संकल्प अपनेमें है ही नहीं। परन्तु ऐसा सीखनेसे वह मिटता नहीं। संकल्पको अपनेमें मिलाये नहीं। संकल्प तो आते-जाते हैं, पर मैं रहता हूँ, फिर ये मेरेमें कैसे?

विध्यात्मक साधनके साथ अहंकार रहता है। वृत्तियोंके साथ विरोध करनेसे उनमें बल आता है। अतः उनसे उपराम हो जायँ—'**शनैः शनैरुपरमेद्०**' (गीता ६। २५)। ऐसा मान लें कि उनसे हमारा मतलब नहीं है। हम ईश्वरके अंश, अविनाशी, चेतन, अमल, सहज सुखराशि हैं—यह बात हर समय याद रखें। पारमार्थिक मार्गमें कभी हार स्वीकार न करे; क्योंकि इस मार्गमें नफा ही होता है, नुकसान होता ही नहीं।

जो अपनी बात न माने, वह अपना कैसे?

××× ××× ××× ×××

साधकके लिये खास बात है—निर्दोषताका अनुभव करना। संसारमें जितने भी प्राणी हैं, सबका वर्तमान निर्दोष है। दोषोंकी उत्पत्ति और विनाश होता है। सभी विकार आदि-अन्तवाले हैं, पर हम आदि-अन्तवाले नहीं हैं। हम स्वयं सर्वथा निर्दोष हैं। **मेरेमें दोष नहीं हैं—इसका अभिमान करना भी भूल है और अपनेमें दोष मानना भी भूल है।**

जो निवृत्त है, उसीकी निवृत्ति होती है। जो प्राप्त है, उसीकी प्राप्ति होती है। अतः हमारी सत्ता सर्वथा निर्दोष है। दोष दीखनेपर भी अपनेको दोषी न मानें। **'तांस्तितिक्षस्व भारत'** (गीता २।१४)—इनको सहनेका तात्पर्य है कि इनको अपनेमें मत मानो।

दोष कर्तामें होता है, करणमें नहीं। कर्ताने ही दोषको पकड़ा है, उसे अपनेमें माना है। वास्तवमें दोष है नहीं। कुत्ता घरमें आ जाय तो वह घरका मालिक नहीं हो जाता। दोष आते-जाते हैं, हम रहते हैं। अतः भूतकालके दोषोंको लेकर अपनेको दोषी मानना बहुत बड़ी भूल है।

××× ××× ××× ×××

विकार हमारे साथी नहीं हैं, हम विकारोंके साथी नहीं हैं। इसका अनुभव करना चाहिये। परिवर्तनशीलकी सत्ता विद्यमान नहीं है—**'नासतो विद्यते भावः'** (गीता २।१६)। हम स्वयं अपरिवर्तनशील हैं। हम सबके भाव-अभाव दोनोंको जानते हैं, पर अपने अभावको नहीं जानते।

सत्संगसे इतना लाभ होता है, जिसका कोई ठिकाना नहीं है! सत्संगसे अपने-आप बेहोशी मिटती है और होश आता है।

सुखमें तो हमारी मरजी भी होती है, पर दुःखमें शुद्ध भगवान्‌की मरजी (कृपा) होती है। हमारी दृष्टि कड़वी या मीठी दवाकी तरफ न होकर वैद्यकी तरफ होनी चाहिये।

बच्चेकी दृष्टि तीन अंगुल (जीभ)-की होती है। जीभको अच्छी न लगे तो वह दवा थूक देता है। बड़े आदमीकी दृष्टि तीन हाथ (शरीर)-की होती है। साधककी दृष्टि तीन जन्मोंकी

होती है। वह यह देखता है कि पिछले जन्ममें किये हुए कर्मोंका फल मैं इस जन्ममें भोग रहा हूँ और इस जन्ममें जो कर्म करूँगा, उनका फल अगले जन्ममें भोगना पड़ेगा। परन्तु सिद्ध महापुरुषकी दृष्टि असीम, व्यापक होती है—**'वासुदेवः सर्वम्'**।

××× ××× ××× ×××

अपना उद्धार करना नया काम नहीं है। मुक्ति स्वतःसिद्ध तत्त्व है। जीव परमात्माका है—यह स्वतःसिद्ध है। हमें स्वाभाविकतातक पहुँचना है। **मुक्ति होनेपर फिर बन्धन नहीं होता; क्योंकि मुक्ति स्वतःसिद्ध है। परन्तु बन्धन होनेपर मुक्ति होती है।** जन्म-मरण अपना बनाया हुआ है; जैसे—बीड़ी-सिगरेट पीनेकी आदत अपनी बनायी हुई है!

सदुपयोग करनेकी अपेक्षा भी दुरुपयोग न करनेकी बहुत महिमा है। अच्छा काम करनेवाले कई आदमी मिलेंगे, पर बुरा काम न करनेवाले कम मिलेंगे। वास्तवमें विहित करनेकी अपेक्षा निषिद्धका त्याग श्रेष्ठ है। त्यागकी बहुत महिमा है—**'त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्'** (गीता १२। १२), **'त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः'** (कैवल्य० १। ३)।

××× ××× ××× ×××

मनुष्यमात्र मुक्तिका, परमात्मप्राप्तिका अधिकारी है। हरेक अवस्था, परिस्थितिमें रहनेवाला मनुष्य परमात्माको प्राप्त कर सकता है। भगवान्‌की कृपा इतनी विलक्षण है कि उसकी महिमा कोई कह नहीं सकता। भगवान् जीवन्मुक्तपर भी कृपा करके उसे मुक्तिके आनन्दमें अटकने नहीं देते। उसे अपना प्रेम प्रदान करते हैं।

एक ही परमात्मा इतने रूपोंमें प्रकट हुए हैं कि उनकी गणना नहीं कर सकते। नौ लाख शक्तियाँ पैदा हुईं। प्रेमका रमण ही वास्तवमें रमण है—**'एकाकी न रमते'**। जैसे श्रीजी भगवान्से प्रकट हुईं, ऐसे ही आप-हम सब भगवान्से प्रकट हुए हैं। **खेलमें जो फुटबालको लेता है, वह हार जाता है और जो ठोकर मारता है, वह जीत जाता है। हमने सांसारिक वस्तुओंको ले लिया, इसलिये हार गये।**

आप रुपयोंको हाथका मैल भी कहते हो और ज्यादा रुपये (मैल) होनेपर मानते हो कि मैं बड़ा आदमी हो गया!

'हे नाथ! मैं आपका हूँ'—यह सुननेके लिये भगवान् लालायित हैं! वे आपसे हृदयसे स्वीकृति चाहते हैं। भगवान्को 'मेरा' कहनेवाला मनुष्य ही हो सकता है। पशु, पक्षी, प्रेत, भूत-पिशाच, देवता आदि कौन भगवान्को अपना कहता है? मनुष्य भगवान्को अपना न कहे तो भगवान्को विचार आता है—**'मामप्राप्यैव'** (गीता १६। २०)। मनुष्य विश्वमात्रकी सेवा कर सकता है। वह भगवान्का भी आदरणीय हो सकता है!

गीतामें भगवान्ने अर्जुनकी **'शाधि माम्'** (२। ७)—इस बातको तो पकड़ लिया, पर **'न योत्स्ये'** (२। ९)—इस बातको पकड़ा ही नहीं! भगवान् भक्तके बड़े लोभी हैं!

यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः॥

(गीता ८। ६)

'हे कुन्तीपुत्र अर्जुन! मनुष्य अन्तकालमें जिस-जिस भी भावका स्मरण करते हुए शरीर छोड़ता है, वह उस

(अन्तकालके) भावसे सदा भावित होता हुआ उस-उसको ही प्राप्त होता है अर्थात् उस-उस योनिमें ही चला जाता है।'

मनुष्यको अन्तकालमें कुत्तेका स्मरण होता है तो वह कुत्तेकी योनिको प्राप्त होता है, और भगवान्‌का स्मरण होता है तो वह भगवान्‌को प्राप्त होता है। जितने मूल्यमें कुत्तेकी योनि मिले, उतने ही मूल्यमें भगवान् मिल जायँ! कितने सस्ते हैं भगवान्!!

भगवान् प्रतीक्षा करते हैं कि कोई कहे 'मैं आपका हूँ'। अत: सच्चे हृदयसे कह दें कि 'हे नाथ! मैं आपका हूँ' तो भगवान् राजी हो जायँ!

××× ××× ××× ×××

एक भगवान्‌के शरण हो जाना है और अन्तमें **'वासुदेव: सर्वम्'** में पहुँचना है। ऐसे शरण होनेवाले महात्माको भगवान्‌ने अत्यन्त दुर्लभ बताया है— **'स महात्मा सुदुर्लभ:'** (गीता ७। १९)।

हमारे हृदयमें परमात्माके सिवाय दूसरी वस्तुओंकी महत्ता है, इसी कारण परमात्मप्राप्ति दुर्लभ हो रही है। परमात्मा सब जगह हैं, पर प्रकृतिजन्य पदार्थोंकी प्रियता हमें उनसे विमुख करती है।

××× ××× ××× ×××

पारमार्थिक तत्त्वकी तरफ चलनेके लिये पारमार्थिक चर्चा करते हैं, पर इससे भी आवश्यक है—व्यवहार शुद्ध करना। कारण कि वास्तवमें परमार्थ नहीं बिगड़ा है, व्यवहार बिगड़ा है। परमात्मतत्त्वको बनाना नहीं है। स्वभावको शुद्ध बनाना है। सूर्यको नहीं बनाना है, प्रत्युत अपने नेत्रोंको शुद्ध, ठीक करना है।

परमात्मासे दूर रहकर परमात्माका असली स्वरूप नहीं जान सकते। कारण कि हम परमात्माके साक्षात् अंश हैं। संसारको महत्त्व देनेसे न परमात्माका ज्ञान होगा, न संसारका। हम परमात्मासे अलग नहीं हुए हैं, प्रत्युत विमुख हुए हैं। विमुख होनेका तात्पर्य विपरीत दिशामें मुख करना नहीं है।

××× ××× ××× ×××

इन्द्रियों और मनसे होनेवाले सुखको छोड़े बिना आप जी नहीं सकते। नींद न आये तो मनुष्य पागल हो जाय! **मन और इन्द्रियोंके सुखके बिना हम जी सकते हैं। सुख मन-इन्द्रियोंसे ही होता है—यह धारणा गलत है।** गाढ़ नींद (सुषुप्ति)-में मन-इन्द्रियोंके बिना भी सुख होता है—इसका अनुभव पशु, पक्षी, वृक्षको भी होता है। वास्तवमें मन-इन्द्रियोंके बिना जो सुख होता है, वह मन-इन्द्रियोंसे होता ही नहीं। कारण कि मन-इन्द्रियोंके सुखसे थकावट आती है। निद्रासे शरीर-मन-इन्द्रियोंमें ताजगी आ जाती है।

श्रोता—सुषुप्ति और समाधिमें क्या फर्क है?

स्वामीजी—सुषुप्तिमें मूर्च्छा होती है, समाधिमें जागृति होती है। सुषुप्तिमें सिर नीचे हो जायगा, समाधिमें नहीं। सुषुप्तिमें इतनी ताकत नहीं कि सिरका भार उठा सके। सुषुप्तिसे जगनेपर 'मैं सुखसे सोया' यह भाव रहता है, पर मूर्च्छासे जगनेपर 'कुछ पता नहीं था' यह भाव रहता है।

उपर्युक्त बातोंसे सिद्ध हुआ कि संसारके सुखकी अपेक्षा त्यागका सुख विशेष है। त्यागके सुखके बिना आप जी नहीं सकते। संसारको तो भगवान्‌ने दुःखालय कहा है— **'दुःखालयम्'**

(गीता ८। १५)। मन-इन्द्रियोंका सुख ही सम्पूर्ण दुःखोंका कारण है। मन-इन्द्रियोंसे सुख लेनेवालेको दुःख भोगना ही पड़ेगा। संसारका सुख भोगते हुए दुःखसे बच सकते ही नहीं।

××× ××× ××× ×××

हरेक प्राणी सुख चाहता है। कई बातें ऐसी हैं, जिन्हें न जाननेसे दुःख भोगना पड़ता है। सुख-दुःखका भोक्ता मन नहीं है, प्रत्युत स्वयं है। मन तो करण है। **कर्ता-भोक्ता स्वयं है, मन नहीं।**

एक ही परिस्थिति सबके लिये सुखदायी या दुःखदायी नहीं होती। जैसे—वर्षा कुम्हारके लिये दुःखदायी है और किसानके लिये सुखदायी।

भीतरका सुख-दुःख परिस्थितिसे नहीं होता, प्रत्युत अज्ञानसे, मूर्खतासे, अविवेकसे होता है। विरक्त संतके पास स्त्री, पुत्र, मकान, रुपये, वस्त्र आदि नहीं होते, फिर भी वह सुखी रहता है। इतना ही नहीं, उसका संग करनेसे बड़े-बड़े राजा-महाराजा भी सुख-शान्तिका अनुभव करते हैं।

जो मिल जाय, उसीसे काम चलाना है, नहीं मिले तो उसकी इच्छा ही नहीं करना है। किसी चीजकी इच्छा ही नहीं हो तो दुःख कैसे होगा? *'जाही विधि राखे राम, ताही विधि रहिये'*—यह बहुत बढ़िया बात है! यदि इसे नहीं मानोगे तो रोनेके सिवाय क्या करोगे?

रुपयोंके द्वारा यदि आप बड़े हो गये तो यह आपकी बड़ाई नहीं है, प्रत्युत रुपयोंकी बड़ाई है। आप तो छोटे ही हुए।

वास्तवमें हम ही मोटरपर चढ़ते हैं। आप मोटरपर नहीं चढ़ते, प्रत्युत मोटर आपपर चढ़ती है। तात्पर्य है कि यदि आपको मोटरकी चिन्ता होती है, तो मोटर आपपर चढ़ गयी और मोटरकी चिन्ता नहीं होती तो आप मोटरपर चढ़ गये।

××× ××× ××× ×××

जैसे मनुष्य बढ़िया चीजकी बड़ी निगरानी रखता है, ऐसे ही मनुष्यशरीरकी भी निगरानी रखनी चाहिये। शरीर भगवान्‌का है; अतः उसकी भी सेवा करनी है। शरीरको भोगोंमें लगाना शरीरपर अत्याचार करना है। जीभ भोजनकी परीक्षा करनेके लिये है, इसलिये नहीं है कि जो चाहे, वही खा ले। जीभ दरबानकी तरह है। दरबान रक्षाके लिये होता है कि हर कोई भीतर न जाय।

××× ××× ××× ×××

आजकल जो आत्महत्या आदि दुर्घटनाएँ हो रही हैं, इनका खास कारण है—अपनी संस्कृतिका त्याग। **भोग भोगनेकी वृत्ति अधिक होनेसे ही आत्महत्या होती है।** भोग और संग्रहकी वृत्ति बढ़नेका परिणाम यही होगा।

आजकलकी संस्कृतिको माननेवाले लोग मेरी बात सुननेके लिये तैयार नहीं हैं, जबकि मैं उनकी बात सुननेको तैयार हूँ। अपने विरोधीकी बात सुननेसे बड़ा लाभ होता है। विरोधीकी बात चाहे मानें या न मानें, पर कम-से-कम उसे सुनना तो अवश्य चाहिये। जो मेरा विचार है, वही ठीक है—ऐसा मानते हुए दूसरेकी बात न सुनें तो यह अपनी मूर्खताको सुरक्षित रखनेका उपाय है।

पुरुषोंमें तो धन-संग्रहकी अधिकता हो रही है और स्त्रियों तथा बच्चोंमें भोगोंकी अधिकता हो रही है। भोग न मिलें तो वे आत्महत्या कर लेंगे। भोगोंको शरीरसे भी अधिक कीमती मान लिया। परीक्षामें पास या फेल होना कामकी चीज है, शरीर कामकी चीज नहीं है—यह बुद्धि हो रही है! फेल होनेपर आत्महत्या कर लेंगे। ऐसे लोग धर्मको क्या जानें? विदेशोंमें आत्महत्या ज्यादा होती थी। अब वही संस्कृति यहाँ आनेसे वही घटनाएँ यहाँ होंगी।

परमार्थमें लगे मनुष्य तो दूसरेकी बात सुन लेते हैं, पर भोगोंमें लगे मनुष्य दूसरेकी बात सुन नहीं सकते।

मनके माध्यमसे ही भोग होता है—यह बात है ही नहीं। सुषुप्तिके सुखमें क्या मन रहता है? नहीं रहता।

यदि आप अपनेसे निर्बलकी रक्षा नहीं करते तो फिर भगवान्‌से अपनी रक्षा माँगना क्या न्याय है?

××× ××× ××× ×××

अपने साधनमें प्रेम, ममता अथवा पक्षपात होना बाधक नहीं है, प्रत्युत दूसरेकी निन्दा या खण्डन करना बाधक है—*'भगति पच्छ हठ नहिं सठताई'* (मानस, उत्तर० ४६।४)। **साधक तो स्वार्थके लिये अपने मतका मण्डन और दूसरेके मतका खण्डन करते हैं, पर आचार्य ऐसा करते हैं—अपने मतका प्रचार करनेके लिये।** साधकके लिये तो अपने मतका पालन करना ही ठीक है।

××× ××× ××× ×××

मनुष्यमात्र सबसे श्रेष्ठ, ऊँचा बनना चाहता है। श्रेष्ठ बननेके

लिये नाशवान् शरीर-संसारसे ऊँचा उठना चाहिये। ऊँचे-से-ऊँचे परमात्मा हैं। उन परमात्माका आश्रय लेनेसे ही मनुष्य ऊँचा हो सकता है।

भगवान्‌ने उपदेश भी युद्धके समय, युद्धभूमिमें दिया है, जबकि उपदेश एकान्तमें, शान्तिके समय, पवित्र स्थानपर दिया जाता है। तात्पर्य यह है कि युद्ध-जैसे मौकेपर भी उपदेश दिया जा सकता है और युद्ध-जैसी क्रिया करते हुए भी कल्याण किया जा सकता है।

××× ××× ××× ×××

संसारका ज्ञान संसारसे अलग होनेपर होता है—यह नियम है; क्योंकि वास्तवमें संसार अलग है। संसारके साथ रहते हुए संसारका ज्ञान नहीं कर सकते। संसारसे कुछ भी चाहना संसारके साथ रहना है।

भोग भोगनेसे श्वास अधिक खर्च होते हैं। आज आयु कम होनेका कारण है कि भोग बढ़ गये। परिवार-नियोजन कार्यक्रमसे आयु और कम होगी तथा रोग बढ़ेंगे। भोगोंके सिवाय भी सुख है—यह कोई समझ सकेगा ही नहीं। परिवार-नियोजनके कारण मनुष्य अब पशुओंसे भी नीचा हो गया है। कुत्ते, गधे आदि भी मर्यादामें रहते हैं, वर्षमें एक महीना ही बिगड़ते हैं, पर मनुष्य बारहों महीने बिगड़ता है! मूलमें भोगके सिवाय कुछ नहीं है। सारा जीवन भोगपर ही आधारित हो गया है।

××× ××× ××× ×××

गीता अलौकिक ग्रन्थ है। इसके समान भी कोई ग्रन्थ

नहीं है। वेदोंका सार उपनिषद् हैं और उपनिषदोंका सार गीता है। इस प्रकार गीता परम्परासे तो श्रेष्ठ है ही, इसकी अपनी भी एक विशेष विलक्षणता है। गीता बहुत अगाध ग्रन्थ है। इसकी विलक्षणताका कोई पारावार नहीं है। यदि मनुष्य गीताके अनुसार कार्य करे तो उसके सब कार्य साधन हो जायँगे। गीताके अनुसार व्यवहार करते हुए परमार्थकी सिद्धि हो जाती है।

मेरेपर भगवान्‌की विशेष कृपा है कि पढ़ाईके आरम्भमें (वि०सं० १९७२ में) मुझे गीताका **'न तद्भासयते सूर्यः०'** (१५।६)—यह श्लोक ही सिखाया गया! वि०सं० १९८४ मुझे गीता कण्ठस्थ मिली। मैंने कण्ठस्थ की नहीं। 'कल्याण' में सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-के लेख पढ़नेसे ऐसा असर पड़ा कि ये शास्त्रके पण्डित तो नहीं हैं, पर शास्त्रके मर्मको जाननेवाले हैं, अनुभवी, तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त महापुरुष हैं। **ये विद्याके जोरसे नहीं लिखते, प्रत्युत अनुभवके जोरसे लिखते हैं।**

अभी जो गीता समझमें आ रही है, वह तो सूर्यकी उस किरणके समान है, जो कमरेके भीतर आयी है, कमरेके बाहर सूर्यका कितना प्रकाश होगा!

'गीता-जयन्ती' के दिन गीताका अवतार हुआ था, जन्म नहीं—**'स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः'** (गीता ४।३)। दर्शनोंमें उतना गहरापन नहीं दीखता, जितना गीतामें दीखता है। मुक्त होनेके बाद भी दार्शनिकोंमें जो मतभेद रहता है, वह मतभेद गीता दूर करती है।

भगवान्‌से प्रार्थना करके हम जो प्राप्त कर सकते हैं, वही कपड़ेके एक टुकड़ेसे प्रार्थना करके भी प्राप्त कर सकते हैं—यही 'वासुदेवः सर्वम्' का तात्पर्य है। अधिभूत (अपने शरीरसहित सम्पूर्ण पांचभौतिक जगत्) भी भगवान्‌का ही स्वरूप है (गीता ७। ३०)।

××× ××× ××× ×××

जैसे भगवान्‌से अधिक विलक्षणता भक्तोंमें दीखती है, ऐसे ही भक्तोंसे भी 'भक्तोंके भक्त' में अधिक विलक्षणता आती है— ***'कारन तें कारजु कठिन'*** (मानस, अयो० १७९)।

अन्यायपूर्वक भोग भोगना और परायी चीजोंपर दृष्टि रखना—ये पारमार्थिक मार्गमें बहुत बड़ी बाधाएँ हैं। सुख-भोग, ऐश-आरामकी तरफ दृष्टि बहुत घातक है। सुखासक्ति मिटेगी दूसरेके दुःखसे दुःखी होनेपर। **दूसरेके दुःखसे दुःखी होना सबसे ऊँची सेवा है और गोपनीय सेवा है, सेवाका मूल है।** दूसरेके दुःखसे दुःखी हो जायँ तो आपके पास जो वस्तु है, वह दूसरेकी सेवामें लग जायगी। जैसे आपको प्यास लगे और पासमें जल हो तो आप उस जलको पी लेते हो, ऐसे ही दूसरा प्यासा हो तो क्या आपके पास जल पड़ा रह सकेगा? एक **मार्मिक बात है कि आपके पास कुछ नहीं हो और आप दूसरेके दुःखसे सच्चे हृदयसे दुःखी हो जायँ तो वह दुःख भगवान्‌को हो जायगा! उसके दुःख-नाशका उपाय भगवान् करेंगे।**

भगवान्‌को 'सर्वभाषाविद्' (सब भाषाओंको जाननेवाले) कहा गया है। इसमें एक मार्मिक बात है कि पहले मनमें भाव

उठता है, पीछे मनुष्य उसे अपनी भाषामें व्यक्त करता है। **भगवान् तो मनमें उठनेवाले भावको ही जान लेते हैं, भाषा तो पीछे रही!** जहाँ भाव उठता है, वहीं भगवान् मौजूद हैं।

सच्चा दुःख भगवान् सह नहीं सकते। भगवान्‌की प्राप्तिके लिये, अपने कल्याणके लिये जो दुःख होता है, वह असली दुःख है, जिसे भगवान् सह नहीं सकते। संसारके लिये दुःखी होना तो दुःखके लिये दुःखी होना है, जिसे भगवान् सह लेते हैं। दयालु होते हुए भी भगवान्‌को उसपर दया नहीं आती, जो दुःखके लिये दुःखी होता है।

देशका असली नेता वही होता है, जो देशके दुःखसे दुःखी होता है। सन्तोंके हृदयमें दुःख होता है कि दूसरेका दुःख कैसे मिटे और वे अपनेमें असमर्थताका अनुभव करते हैं तो यह दुःख भगवान् सह नहीं सकते। इसलिये ऐसे सन्तोंके दर्शन, स्पर्श, भाषणसे दूसरोंका दुःख मिटता है।

××× ××× ××× ×××

हम संसारके साथ मिलते हैं, पर परमात्माके साथ तो मिले हुए ही हैं। भगवान् हैं—यह विश्वास है, ज्ञान नहीं। विचारके विषय जीव और जगत् हैं।

पहले भक्त होता है, फिर भक्ति होती है, फिर भगवान् रह जाते हैं। ज्ञानमार्गमें पहले जिज्ञासु होता है, फिर जिज्ञासा होती है, फिर ज्ञानमात्र रह जाता है। ऐसा सब साधनोंमें होता है।

भगवान्‌का विश्वास मुख्य है। बुद्धिकी तीक्ष्णता मुख्य नहीं है। बुद्धि शुद्ध नहीं होगी तो भगवान्‌के तरफ नहीं चल

सकते। **बुद्धिकी शुद्धि काम आती है, तीक्ष्णता नहीं।** बुद्धिकी तीक्ष्णता जज-बैरिस्टर आदि बननेमें काम आ सकती है। बुद्धिकी शुद्धिमें भी विश्वास विशेष है। विश्वास तेज हो तो भगवत्प्राप्ति तत्काल हो जाती है। भगवान्‌पर विश्वास न होनेसे जगत् ईश्वररूप नहीं दीखता। पक्षपात, मतभेद करना बुद्धिकी अशुद्धि है। राग-द्वेषके कारण जगत् ईश्वररूप नहीं दीखता। जितनी भेदबुद्धि होगी, उतनी भगवत्प्राप्तिमें देरी होगी।

भक्त जगत्‌को भगवत्स्वरूप देखते हैं, और सन्तोंको भगवान्‌से भी अधिक देखते हैं— ***'मोतें संत अधिक करि लेखा'*** (मानस, अरण्य० ३६। २)।

श्रोता—भगवान्‌पर विश्वास कैसे हो?

स्वामीजी—विश्वासकी कमी दूर होगी भगवान्‌की कृपासे। **प्रेम और विश्वास भगवान्‌से माँगनेकी चीज है।** विश्वास कैसे हो—यह लगन हो गयी तो यह भगवान्‌से माँगना हो गया, प्रार्थना हो गयी! **आपकी आवश्यकता ही भगवान्‌की प्रार्थना है।**

××× ××× ××× ×××

भगवान्‌की स्मृति और सेवाकी बड़ी भारी आवश्यकता है। सेवाकी भावना बन जाय। ऐसी भावना सत्संगी ही बना सकते हैं। बड़े-बूढ़ोंकी सेवा की जाय। गायोंकी सेवा की जाय। समय बहुत भयंकर आया है। आगे और अधिक भयंकर समय आनेकी सम्भावना है। इसलिये आपको अधिक सावधान हो जाना चाहिये।

××× ××× ××× ×××

वास्तवमें रुपये अच्छे नहीं हैं, पर लोभके कारण रुपये अच्छे (प्रिय) लगते हैं। ऐसे ही मोहके कारण संसार, कुटुम्बी अच्छे लगते हैं। प्रेमके कारण भगवान् अच्छे, मीठे लगते हैं। गोपियोंको, मीराबाईको भगवान् मीठे लगते थे। प्रेमके कारण ही मित्रसे मिलनेमें आनन्द आता है। गायके प्रेमके कारण बछड़ेको गायके दूधसे जो पुष्टि होती है, वह केवल दूधसे नहीं।

नाशवान्‌में 'मोह' होता है, अविनाशीमें 'प्रेम' होता है। मूलमें चीज (आकर्षण) एक है। मोहसे पतन होता है।

लेना-ही-लेना जड़ता है, देना-ही-देना चेतनता है। लेना और देना—दोनों चिज्जड़ग्रन्थि हैं।

××× ××× ××× ×××

लेनेकी इच्छावाला साधक नहीं होता। साधकके स्वभावमें देना-ही-देना होता है। त्याग और संग्रह सभीमें होता है, पर साधकमें त्याग-ही-त्याग होता है।

लेना-ही-लेना पशुमें होता है। लेना-देना साधारण मनुष्यमें होता है। देना-ही-देना साधक और सिद्धमें होता है। साधक अपने लिये कुछ नहीं करता।

स्वार्थ और अभिमानके त्यागसे ही साधक होता है, और साधकको ही सिद्धि होती है। सुख-सुविधा, आराम चाहनेवाला साधक नहीं हो सकता। साधककी दृष्टि सुख-सुविधामें नहीं रहती।

जबतक असत्‌का संग है, तबतक सत्संगी नहीं हैं। यदि भोग और संग्रहकी रुचि है तो वह साधकोंमें भरती नहीं

हुआ। उसकी गिनती संसारीमें ही होगी। **साधक साधनके लिये जीता है, सुख-सुविधाके लिये नहीं।**

××× ××× ××× ×××

देखनेमें स्वार्थ अच्छा दीखता है, पर परिणाममें पतन ही होता है। **लड़ाईमें दोनों ही पक्षोंकी हार (अहित) है, और प्रेममें दोनों ही पक्षोंका उद्धार है।**

सबकी मुक्ति चाहनेसे अपनी मुक्ति जल्दी होती है। केवल अपनी मुक्ति चाहनेसे देरी लगती है।

दूसरेके हितके लिये अपने सुखका त्याग कर दे। अपने सुखको रेतीमें मिला दे तो खेती हो जायगी।

संसारका सुख हम छोड़ते नहीं, और उसे छोड़े बिना पारमार्थिक (अक्षय) सुख मिलता नहीं।

दुःख, अशान्तिकी अवस्थामें 'काम' पैदा होता है।

ममता रखनेसे वस्तुओंका सदुपयोग नहीं होता। अपना न माननेसे ही वस्तुओंका सदुपयोग होता है। वस्तुओंको अपना न माननेसे और सबको अपना माननेसे उदारता आती है। **वस्तु अपनी माननेसे और सबको अपना न माननेसे उदारता नहीं आती।** वस्तुको चाहे संसारकी मानो, चाहे प्रकृतिकी मानो, चाहे भगवान्‌की मानो। उसे अपनी मानना बेईमानी है। **केवल 'तू' और 'तेरा' है, 'मैं' और 'मेरा' है ही नहीं।**

××× ××× ××× ×××

विचारसे विवेक होता है और चिन्तनसे स्थिति होती है। चिन्तन अभ्यास है। अभ्याससे विवेक तेज है। चिन्तन मनसे होता है। मन अपरा प्रकृति है। शरीरको संसारसे अलग मानना अविवेक है।

सत्संग सुनकर विचार नहीं करते। **'विचार करना' वैराग्यमें हेतु होता है और 'विचार उदय होना' तत्त्वप्राप्तिमें हेतु होता है।**

अपने लिये कोई अपना नहीं है, पर सेवाके लिये सभी अपने हैं। चाहे किसीको अपना मत मानो, चाहे संसारको अपना मानो—दोनोंका परिणाम एक होगा। अधूरी चीज ही बाधक होती है। अधूरा वैद्य रोगीको मार देता है! अतः या तो बिल्कुल न जाने, या पूरा जाने। **सुख लेनेके लिये शरीर भी अपना नहीं है और सेवा करनेके लिये पूरा संसार अपना है।**

××× ××× ××× ×××

अपनी गौणता और शरीरकी मुख्यता मान लेना गलती है। इस तादात्म्यसे साधन क्रियाप्रधान होता है और भाव व विवेकप्रधान साधनमें कठिनता पड़ती है। **शरीरको ही अपना स्वरूप माननेके कारण शास्त्रोंमें क्रियाप्रधान साधनकी मुख्यता बतायी गयी है।** ज्ञानके साधनमें भी श्रवण, मनन आदि साधन बताये गये हैं, जिनमें शरीरकी प्रधानता रहती है। यदि पहले ही तादात्म्य तोड़ दें तो बहुत जल्दी काम होता है। जबतक जड़के साथ सम्बन्ध माना हुआ है, तबतक चिन्मयताकी प्राप्ति कठिन है। अतः पहले तादात्म्य तोड़नेकी बड़ी जरूरत है।

विचार करें कि शरीर और मैं (स्वरूप) एक नहीं हैं। 'मैं हूँ'—इसमें 'मैं' भाग शरीरका और 'हूँ' भाग चेतनका है। सुषुप्तिमें 'मैं' लीन होता है, 'हूँ' लीन नहीं होता।

××× ××× ××× ×××

शरीर 'मैं' नहीं और 'मेरा' नहीं—यही असली त्याग है। यह होनेसे सभी साधन बहुत सुगम हो जायँगे। **शरीरके साथ एकता माननेसे ही साधन कठिन मालूम देता है।** शरीरको मैं-मेरा न मानना वर्तमानकी चीज है। आज चाहो तो आज कर लो! शरीरको मैं-मेरा मानना ही अविद्या है, अज्ञान है।

××× ××× ××× ×××

जो आदि और अन्तमें नहीं है, वह वास्तवमें बीचमें भी है नहीं, पर दीखता है। वस्तु-व्यक्ति पहले भी नहीं थे, पीछे भी नहीं रहेंगे, फिर उनके जानेपर शोक कैसा? शोक-चिन्ता करना बेसमझी है, और बेसमझी मिटानेके लिये सत्संग है। संसारकी वस्तु कितनी ही मिल जाय तो भी अभाव रहेगा ही।

आप अपनेको अयोग्य मानकर भगवत्प्राप्तिका अनधिकारी मत मानें। सभी परमात्माको प्राप्त कर सकते हैं। योग्य-अयोग्य सभी भगवान्‌को अपना मान सकते हैं।

××× ××× ××× ×××

श्रोता—हमारेमें योग्यता आ जाय, विद्या आ जाय—ऐसी इच्छा क्यों होती है?

स्वामीजी—ऐसी इच्छा होती है मान-बड़ाईकी इच्छासे। **परमात्माकी प्राप्तिमें योग्यताकी जरूरत नहीं है।** परमात्मप्राप्तिमें मोह भी बाधक है और विद्या भी—'**यदा ते मोहकलिलम्०**' '**श्रुतिविप्रतिपन्ना ते०**' (गीता २। ५२-५३)। अभिमान होनेसे विद्या आदिका दुरुपयोग होता है। यह अभिमान बाधक होता है। धन, विद्या आदि हों, पर उनका अभिमान न हो—यह कठिन है।

भगवत्प्राप्तिमें अभिलाषा मुख्य है, योग्यता नहीं। धनकी प्राप्तिमें एक नंबरमें प्रारब्ध, दो नंबरमें पुरुषार्थ और तीन नंबरमें इच्छा है। परन्तु भगवत्प्राप्तिमें इच्छा (अभिलाषा) एक नंबरमें है।

यद्यपि योग्यता परमात्मप्राप्तिमें साधक नहीं है, पर अभिमान होनेसे वह बाधक हो जाती है। अभिमान अविवेकीको होता है, विवेकीको नहीं।

××× ××× ××× ×××

वस्तुएँ काममें लेनेके लिये हैं, ममता करनेके लिये नहीं। ममताके रहते कभी शान्ति नहीं मिल सकती। **वस्तु हमें छोड़ दे तो मौत है और हम उसे छोड़ दें तो त्याग है।** वस्तुओंके साथ हमारा सम्बन्ध कितने दिन रहनेवाला है—इसका अनुभव करें।

मनुष्ययोनि साधनयोनि है। सुख-दुःखका भोग करेंगे तो हमें भोगयोनि मिलेगी, साधनयोनि नहीं।

××× ××× ××× ×××

हमारा अनुभव, विचार आदि बदलनेवाले हैं। बचपनमें और अनुभव था, अभी और। अतः **शास्त्रों और संतोंके अनुभव, विचार आदिको महत्त्व देना चाहिये।**

कर्मयोग है—संसारमें रहनेकी बढ़िया रीति। कर्मयोगका स्वरूप है—निष्कामभावसे सेवा करना। सुख दें, पर लें नहीं। इससे हम संसारमें सुखपूर्वक, आदरपूर्वक रहेंगे। जो हमसे कुछ चाहे नहीं और सेवा करे, वह व्यक्ति सबको अच्छा लगता है।

××× ××× ××× ×××

विवेकमार्गमें द्वैत रहता है। अतः मुक्त होनेपर द्वैतका एक संस्कार रह जाता है, जिससे दार्शनिक मतभेद होते हैं। जले हुए मेण्टलकी तरह ज्ञानीका अहं जला हुआ रहता है, जिससे व्यवहार होता है। **आचार्योंमें जो सूक्ष्म अहं रहता है, वह दुनियाके कल्याणके लिये होता है।** आचार्यकोटिके सन्त लोकसंग्रहके लिये होते हैं। लड़ाई आचार्योंमें नहीं है, उनके अनुयायियोंमें है। साधकको मतभेदमें न पड़कर तत्परतासे अपने साधनका पालन करना चाहिये।

××× ××× ××× ×××

मनुष्यकी उन्नतिकी कोई सीमा नहीं है। कमी यह है कि आगे बढ़नेका उत्साह नहीं है। आध्यात्मिक विषयमें कभी सन्तोष करना ही नहीं चाहिये। प्रारब्धके अनुसार मिली परिस्थितिमें सन्तोष करना चाहिये।

साधन नित्यकर्मकी तरह नहीं होता, प्रत्युत निरन्तर होता है। साधक निरन्तर सावधान रहता है।

××× ××× ××× ×××

एक समग्र परमात्माके सिवाय कुछ भी नहीं है। सब कुछ वही है, फिर मनको कहाँसे हटायें और कहाँ लगायें? समुद्र और लहरें अलग-अलग हैं, पर जल-तत्त्वमें क्या फर्क है? समुद्रकी लहरें, उसकी सीमा ऊपरसे दीखती है, पर भीतरमें शान्त समुद्र है। इसी तरह ऊपरसे सृष्टि दीखती है, पर भीतर एक परमात्मतत्त्व है—**'समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्'** (गीता १३। २७)।

××× ××× ××× ×××

शास्त्रोंको इदंबुद्धिसे न पढ़कर अनुभव करनेके लिये पढ़े। उन्हें बुद्धिका विषय न बनाये।

जैसे संसार भगवत्स्वरूप है, वैसे शरीर भी भगवत्स्वरूप है। **शरीरको संसारसे अलग रखते हुए अनुभव नहीं होता।** अहम्‌तक सब परमात्मा ही हैं। शरीर संसारका अंश है, संसार शरीरका अंश नहीं। पर हम संसारसे सुख लेना चाहते हैं। सुख लेनेकी चाहना ही अनुभवमें खास बाधा है। **संसार मेरे नहीं, अपितु मैं संसारके काम आ जाऊँ—यह भाव रहना चाहिये।**

माँका ऋण उतार नहीं सकते। माँके चरणोंमें प्रातः-सायं प्रणाम करें और उसके हाथका बना भोजन करें तो वह प्रसन्न हो जायगी। प्रसन्न होनेसे ऋण माफ हो जाता है।

××× ××× ××× ×××

बिना भूखके भोजन मिल गया, तभी लाभ नहीं होता! भूख जाग्रत् करनेका उपाय है—विचार। विचार करें कि सत्संग सुनते इतने वर्ष हो गये, अभीतक लाभ नहीं हुआ! शरीरका कोई भरोसा नहीं। यह परिस्थिति, यह भाव भी सदा रहेगा क्या? यह संयोग क्या सदा रहेगा? एक दिनमें एक बात भी पकड़ लो तो कितना काम हो जाय! श्रीशंकराचार्यजीने कहा है—‘**किमौषधं तस्य विचार एव**’ (प्रश्नोत्तरी ७) अर्थात् विचार ही भवरोगकी दवा है।

सत्संगके द्वारा जो विद्वत्ता आती है, वह पुस्तकें पढ़नेसे नहीं आती।

××× ××× ××× ×××

मैं ज्ञानी हूँ और मैं अज्ञानी हूँ—ये दोनों धारणाएँ अज्ञानियोंकी हैं। ज्ञान होनेपर ज्ञानी नहीं रहता। जबतक ज्ञानी रहता है, तबतक भोग है। जो ज्ञानका भोगी है, वह कभी अज्ञानका भी भोगी हो सकता है। तत्त्वज्ञान होनेपर 'मैं ज्ञानी हूँ, दूसरे सब अज्ञानी हैं'—यह नहीं होता। सबका स्वरूप शरीरसे अलग है, केवल बुद्धिमें फर्क पड़ता है। मैं जानता हूँ—ऐसे वह (तत्त्वज्ञानी) ज्ञानका मालिक नहीं बनता। उसे ज्ञानका अभिमान नहीं होता।

××× ××× ××× ×××

हम शरीर, वस्तुओं, अवस्थाओंके बिना रह सकते हैं और वे हमारे बिना रह सकती हैं। **जो वस्तु हमारे बिना रह सकती है, उसके बिना हम क्यों नहीं रह सकते? हम उसके गुलाम क्यों बनें?** हम परमात्माके अंश हैं। परमात्मा हमारे बिना नहीं रह सकते; क्योंकि वे सबमें परिपूर्ण हैं। अतः हम भी परमात्माके बिना नहीं रह सकते।

शरीरको आपकी आवश्यकता है, आपके बिना शरीर सड़ जायगा, पर आपको शरीरकी आवश्यकता नहीं है। आप शरीरके बिना रह सकते हैं। ऐसा जाननेसे आपमें स्वतन्त्रता आ जायगी। परतन्त्रता मानी हुई है, स्वतन्त्रता स्वत:सिद्ध है।

यदि आप काममें न लें तो सोने और पत्थरमें क्या फर्क हुआ? पहाड़में पड़ा पत्थर और खानमें पड़ा सोना—दोनों समान हैं। आप सोनेको काममें लेते हो, उसे बढ़िया मानते हो तो उसका महत्त्व हो जाता है।

××× ××× ××× ×××

विश्वासमार्गमें देह-देहीका विचार न करके भगवान्‌में लग जाओ, पर ऐसे लगो कि देह याद ही न रहे! अपनेको भगवान्‌का मानो। बार-बार प्रार्थना करो कि हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं। **ऐसा मानो कि भगवान् निरन्तर मुझे देख रहे हैं।**

××× ××× ××× ×××

आरम्भकालको देखना पशुता है। विवेकी मनुष्य परिणामको देखता है, इसलिये वह भोगोंमें रमण नहीं करता—**'न तेषु रमते बुधः'** (गीता ५।२२)। **अर्थका परिणाम अनर्थ है!** संयोगकालमें ही वियोगको देखना चाहिये। संसारका संयोग अनित्य है, वियोग नित्य है। जो अपने विवेकका आदर नहीं करता, वह शास्त्र और सन्तका आदर नहीं कर सकता।

जैसे चाहे दान करो, चाहे आवश्यक काममें खर्च करो, नहीं तो धनका नाश हो जायगा, ऐसे ही समयको चाहे अपने कल्याणमें लगाओ, चाहे दूसरोंकी सेवामें लगाओ, नहीं तो समय नष्ट हो जायगा। भगवान्‌के भजनके बिना समय जाना असह्य होना चाहिये।

भगवान्‌में प्रेम होनेसे भक्त निष्काम स्वतः हो जाता है। भगवान्‌को पुकारो। पुकारनेसे माँ गोदीमें ले लेती है।

××× ××× ××× ×××

पारमार्थिक उन्नति स्वयंकी और सांसारिक उन्नति 'पर' की है। सांसारिक पूँजी साथ नहीं रहती, पर साधन-पूँजी योगभ्रष्ट होनेपर भी नष्ट नहीं होती। पारमार्थिक सम्पत्तिको कोई छीन नहीं सकता। ब्रह्माजी हंसको तो हटा सकते हैं, पर उसके नीर-क्षीर-विवेकको नहीं छीन सकते! सत्संग और

साधनसे होनेवाली उन्नति मरनेपर भी मिटती नहीं, प्रत्युत ढकती है और समयपर प्रकट हो जाती है।

जिज्ञासा और कामना—दोनोंका स्थान एक है। शरीरकी प्रधानतासे सांसारिक इच्छा और स्वरूपकी प्रधानतासे पारमार्थिक इच्छा होती है। जड़ताके साथ तादात्म्य होनेसे ही दोनों इच्छाएँ पैदा हुई हैं।

सत्संगसे बिना परिश्रम एक गति होती है अर्थात् अनुभव बढ़ता है।

××× ××× ××× ×××

जैसे सूर्य और उसका प्रकाश एक है, ऐसे ही श्यामसुन्दर और उनका प्रकाश यह जगत् भी एक है। यह जगत् श्यामसुन्दरका स्वरूप है। परन्तु जैसे जगत्की अपेक्षा श्यामसुन्दरका रूप विशेष है, ऐसे ही सन्तका रूप भी विशेष है—

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥

(मानस, अरण्य० ३६।२)

××× ××× ××× ×××

सत्में असत् नहीं है, पर असत्में भी सत् है। सत् नित्य है, असत् अनित्य है। मुक्ति नित्य है, बन्धन अनित्य है। बन्धनके समय भी मुक्ति विद्यमान है। सत्की तरफ केवल दृष्टि डालनी है।

सत्का भाव और असत्का अभाव स्वीकार करके मन-बुद्धिसे चुप हो जायँ। चुप होनेसे असत्की स्वतः निवृत्ति हो जायगी। असत्को मिटानेका उद्योग करना उसको सत्ता देना है।

××× ××× ××× ×××

सेवा सबकी करे, पर किसीसे कुछ न चाहे। **सेवा करना**

'कर्म' है और किसीसे कुछ न चाहना 'योग' है। योग होनेसे साधक निरपेक्ष हो जाता है। **'सर्वे भवन्तु सुखिनः०'** (सब सुखी हो जायँ·······)—यह भाव रखें तो यह सेवा हो गयी। सबको भला समझें—यह भी सेवा है। सब सुखी हो जायँ—यह समता है, समदृष्टि है। सेवा करना और भगवान्‌को याद करना—यह मनुष्यता है।

'परस्परं भावयन्तः' (गीता ३।११)—इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आप हमारी सेवा करें, इसलिये हम आपकी सेवा करें। यह तो व्यापार है! अतः अपने स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके दूसरेकी सेवा करें। लेनेकी आशा न रखें। सकामभाव रखेंगे तो कर्म होगा, कर्मयोग नहीं। सभी वर्ण अपने-अपने कर्तव्य-कर्मोंके द्वारा दूसरे वर्णवालोंकी सेवा करें।

××× ××× ××× ×××

संसारकी तरफसे खिंचाव हटकर भगवान्‌में खिंचाव हो जाय—यह काम मनुष्य ही कर सकता है। संसार (जड़)-में आकर्षण होनेसे पतन-ही-पतन होता है। भगवान्‌में आकर्षण उत्थानका मार्ग है। भगवान्‌को याद करना और सबकी सेवा करना मनुष्यका काम है। मनुष्यके लिये ही पाँच महायज्ञोंका विधान है*। मनुष्य सबका पालन कर सकता है। नीचेसे लेकर ठेठ भगवान्‌तककी सेवा कर सकता है!

××× ××× ××× ×××

* अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥ (मनुस्मृति ३।७०)

'वेदोंका अध्ययन-अध्यापन करना 'ब्रह्मयज्ञ' है, तर्पण करना 'पितृयज्ञ' है, हवन करना 'देवयज्ञ' है, बलिवैश्वदेव करना 'भूतयज्ञ' है और अतिथि-सत्कार करना 'मनुष्ययज्ञ' है।'

सभी वस्तुओं और व्यक्तियोंका वियोग होगा—इस बातका अपनेपर प्रभाव हो जाय तो हम निहाल हो जायँ! संयोगका भोग करेंगे तो वियोगका दुःख भोगना ही पड़ेगा।

संसारमें लगे हुएका साथी कोई भी नहीं होता, पर भगवान्‌में लगे हुएके सब साथी हो जाते हैं! डाकू भी सन्तकी सेवा करते हैं! साधु होनेमात्रसे कितनी आफतें मिट जाती हैं! साधु, वृद्ध और विधवाके लिये भगवद्भजनके सिवाय क्या काम बाकी रहा? ये भजन न करें तो भगवान् नाराज होते हैं। जो भगवद्भजनमें लग जाता है, उसके लोक-परलोक दोनों ठीक हो जाते हैं।

××× ××× ××× ×××

किसीके दोष या कमी देखनेका क्या हमें अधिकार मिला हुआ है? दोष दिखायी देता है तो यह अपना दोष है। अपने दोषसे ही दूसरेमें दोष दीखता है। **अपना अन्तःकरण जितना दोषी होगा, उतना ही दूसरोंमें दोष अधिक दीखेगा।** रेडियोकी तरह दोषी अन्तःकरण ही दूसरोंके दोषको पकड़ता है। झाड़ू देनेवाला बाजारमें जाकर कूड़ा-करकट ही एकत्र करके अपनी टोकरी भरता है। क्या बाजारमें कूड़े-करकटके सिवाय दूसरी वस्तुएँ नहीं थीं? आप किसीका दोष न देखें तो आपके द्वारा दुनियाकी सेवा हो जायगी। दोष देखेंगे तो '**वासुदेवः सर्वम्**' कैसे दीखेगा?

गुण सदा रह सकते हैं, पर दोष सदा नहीं रह सकते।

××× ××× ××× ×××

हमारे ऋषियों-मुनियोंने विचित्र खोज करके शास्त्रोंकी

रचना की है। उनकी सबपर बहुत कृपा रही है। उन्होंने अपने स्वार्थके लिये शास्त्रोंकी रचना नहीं की है।

पहलेकी अपेक्षा आज धर्मकी महिमा ज्यादा है। आज भगवान् बहुत सस्ते हो गये हैं! इसलिये भगवान्‌को याद करो और दूसरोंकी सेवा करो। किसीकी बुराई न करें तो संसारकी सेवा हो गयी—

यह हमारि अति बड़ि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई॥

(मानस, अयो० २५१।२)

भलाई करनेमें बहादुरी नहीं है, प्रत्युत बुराई छोड़नेमें बहादुरी है। दैवी सम्पत्ति स्वतः है, उद्योगसाध्य नहीं। बुराई मत करो तो भलाई अपने-आप आयेगी।
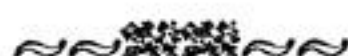
क्या मृत्युके बाद नेत्रदान उचित है?

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

मेरी दृष्टिमें मृत्युके बाद नेत्रदान करना सर्वथा अनुचित है। जैसे अपनी सम्पत्ति देनेका अधिकार बालिग (वयस्क)-को होता है, नाबालिग (अवयस्क)-को नहीं, ऐसे शरीरके किसी अङ्गका दान करनेका अधिकार जीवन्मुक्त महापुरुषको ही है। जिसने अपना कल्याण कर लिया है, अपना मानव-जीवन सफल कर लिया है, वह बालिग है, शेष सब नाबालिग हैं। जीवन्मुक्त महापुरुष भी शरीरके रहते हुए ही नेत्रदान कर सकता है, शरीर छूटनेके बाद नहीं। दधीचि ऋषिने जीवितावस्थामें ही इन्द्रको वज्रनिर्माणके लिये अपना शरीर दिया था। राजा अलर्कने भी जीवितावस्थामें ही एक अन्धे ब्राह्मणको नेत्रदान दिया था।

शैब्यः श्येनकपोतीये स्वमांसं पक्षिणे ददौ । अलर्कश्चक्षुषी दत्त्वा जगाम गतिमुत्तमाम्॥

(वाल्मीकि० अयो० १२।४३)

'राजा शैब्यने बाज और कबूतरके झगड़ेमें (कबूतरके प्राण बचानेकी प्रतिज्ञाको पूर्ण करनेके लिये) बाज पक्षीको अपने शरीरका मांस काटकर दे दिया था। इसी तरह राजा अलर्कने (एक अन्धे ब्राह्मणको) अपने दोनों नेत्रोंका दान करके परम उत्तम गति प्राप्त की थी।'

शवके साथ छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिये। शवका कोई अङ्ग काटनेसे अगले जन्ममें वह अङ्ग नहीं मिलता। अङ्ग मिलता भी है तो उसमें कमी अथवा चिह्न रहता है। कुछ

व्यक्तियोंमें पूर्वजन्मका चिह्न इस जन्ममें भी देखा गया है। बालकके मरनेपर माताएँ उसके किसी अङ्गपर लहसुन लगा देती हैं तो वह चिह्न अगले जन्ममें भी रहता है।

मृत्यूपरान्त नेत्रदानके औचित्यके विषयमें हमने वाराणसीकी 'श्रीगीर्वाणवाग्वर्धिनीसभा' से पूछा तो उन्होंने अपना यह निर्णय लिखकर भेजा—

'**पुरुषाहुतिर्ह्यस्य प्रियतमा**' इत्यादि वचनोंके अनुसार अग्निमें शवकी आहुति दी जाती है। '**सूर्यं ते चक्षुर्गच्छतु**' आदि भी वाक्य हैं। हवनीय द्रव्य शवमें अग्निका अधिकार होनेसे उसे बुद्धिपूर्वक व्यङ्ग करनेका कोई औचित्य नहीं है। मूल शरीरके अभावमें पुत्तल बनाते समय कौड़ियोंसे नेत्रोंकी कल्पना बतायी गयी है। इससे सिद्ध होता है कि मूल शरीरमें नेत्रोंका अस्तित्व आवश्यक है। एवञ्च नेत्रदानके लिये शवके अङ्ग-भङ्गका निषेध आर्थिक (अर्थप्राप्त) है।